वर्ष-3, अंक-2
इंटरनेट संस्करण : 77

पत्रिका
गर्भनाल

ISSN 2249-5967
अप्रैल 2013

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

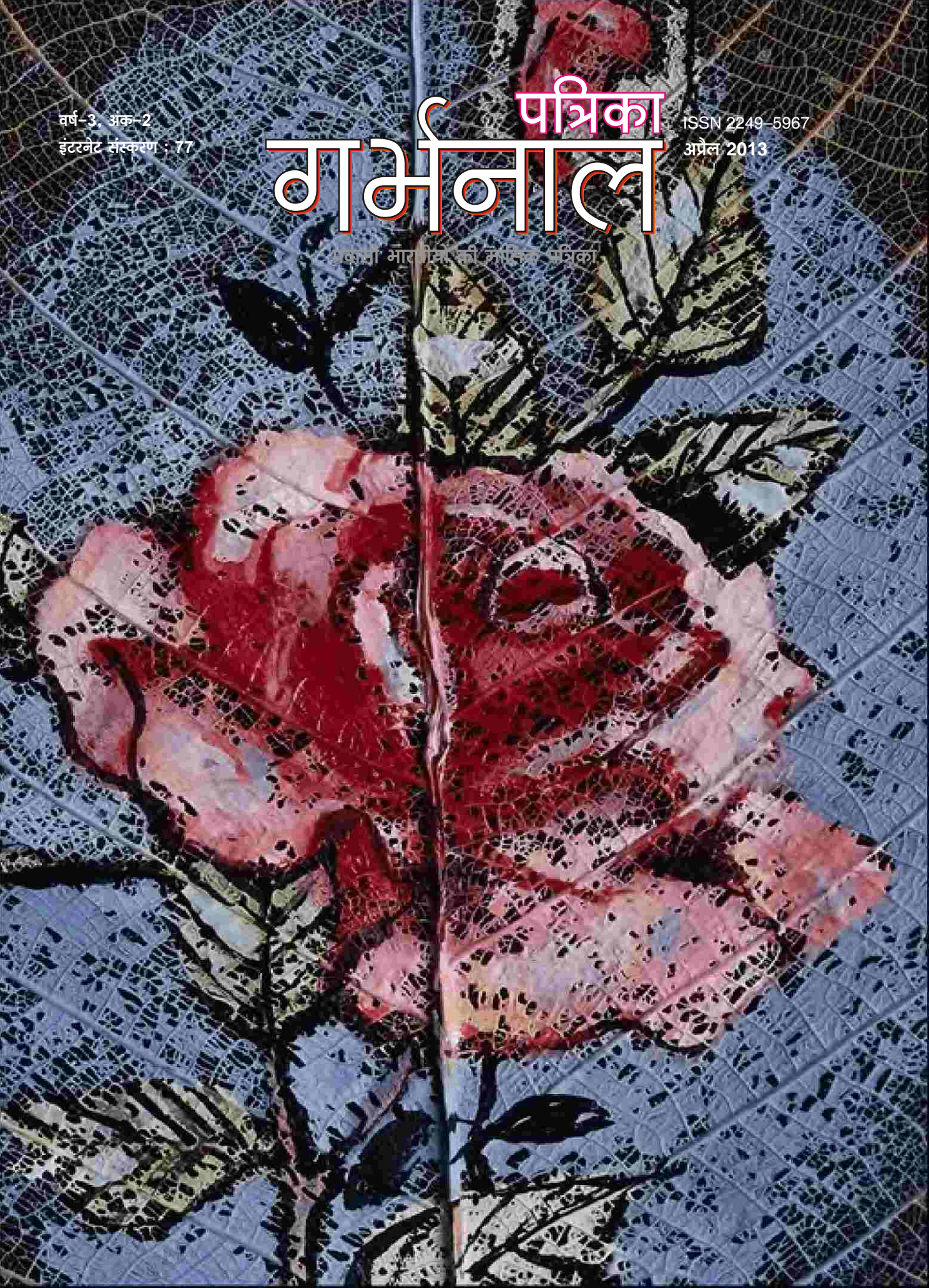

आईये, आभार प्रकट करें

9वें विश्व हिन्दी सम्मेलन–2012
में सम्मानित विदेशी मूल के हिन्दी–प्रेमी विद्वानों के
कृतित्व, हिन्दी के लिये उनके योगदान को
उजागर करने में सहयोग कीजिये
धन्यवाद कहिये!

विद्वानों के नाम हैं :

डॉ. पीटर गेराल्ड फ्रेडलान्डर, ऑस्ट्रेलिया

प्रो. सेर्गेई सेरेबिरयानी, रूस

मार्को जोली, इटली

प्रो. ल्यू अन्वूक, चीन

डॉ. श्रीमती बूधू, मारीशस

श्री बमरूंग खाम, थाइलैंड

प्रो. उपुल रंजीत हेवाताना गामेज, श्रीलंका

सुश्री वान्या जार्जिवा गंचेवा, बुल्गारिया

श्री जबुल्लाह 'फीकरी', अफगानिस्तान

श्री भोलानाथ नारायण, सूरीनाम

सुश्री कैटरीना बालेरीवा दोवबन्या, उक्रेन

डॉ. कृष्ण कुमार, ब्रिटेन

श्री इंदुप्रकाश पांडेय, जर्मनी

श्री सत्यदेव टेंगर, मारीशस

प्रो. टिकेदी इशिदा, जापान

श्री विजय राणा, ब्रिटेन

श्री वेदप्रकाश बटुक, अमेरिका

जानकारी भेजने के लिये ईमेल पता है :
garbhanal@ymail.com

अपनी बात

मेरी माँ के पहनावे में सिलेसिलाए वस्त्र शामिल नहीं थे। वे कमर से साड़ी के नीचे कपड़े का एक टुकड़ा लपेटे रहा करतीं। कमर का ऊपरी भाग साड़ी के आँचल में लिपटा एवम् ढका रहा करता। हमारी दीदी साड़ी के साथ साया और ब्लाउज पहना करती। हमारी छोटी बहन दीदी से बीस साल छोटी थी। उसका विवाह चौदह साल की उम्र में हुआ था। विवाह के पहले वह चड्डी और फ्रॉक और बाद में दीदी की ही तरह साड़ी, साया और ब्लाउज पहनती रही। मेरी बेटी का विवाह तेइस साल की उम्र में हुआ। वह शादी के पहले चड्डी-फ्रॉक और किशोरावस्था में शलवार सूट पहना करती। विवाह के पश्चात् उसके पहनावे में साड़ी, साया और ब्लाउज शामिल हुए, लेकिन शलवार सूट का पहनना भी चलता रहा। मेरी पोती के पहनावे में स्कर्ट के साथ जीन्स, टॉप इत्यादि नवीनतम पोशाक शामिल हैं।

ये सबकी सब अपने-अपने समय के परिवेश में औसत व्यक्ति हैं, हालाँकि एक-दूसरे के परिवेश में अजूबे और अस्वीकार्य। एक औसत परिवार की चार पीढ़ियों के इस सामान्य इतिहास की व्याख्या कैसे की जा सकती है? इस कालखण्ड में समानान्तर रूप से समाज में परिवर्तन होते रहे। प्रौद्योगिकी, परिवहन राजनीति एवम् शिक्षा के क्षेत्रों में प्रगति ने विभिन्न समाजों के बीच सम्पर्क सूत्रों को जन्म दिया और इन्हें क्रमशः शक्तिशाली बनाया।

तस्वीरों की यह श्रृंखला बतलाती है कि समाज के मूल्य-बोध एवम् स्वरूप का निर्द्धारण तत्कालीन उपलब्ध संसाधनों के द्वारा हुआ करता है। जैसे सिलाई मशीन के आविष्कार ने वस्त्रों के स्वरूप में परिवर्तन एवम् विविधता की शुरुआत की। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक कालखण्ड से भारतीय समाज में हलचल, अस्थिरता एवम् आलोड़न की शुरुआत हुई। अब तक अलग-थलग रहते आए विभिन्न समुदायों की एक-दूसरे के साथ अन्तर्क्रिया क्रमशः तीव्रतर होने लग गई। परम्परा में आधुनिकता की रिसावट होने लगी। नए के प्रति भय के साथ नए के प्रति आकर्षण का संघात तीव्रतर होता रहा। विभिन्न समुदायों के मूल्य-बोध मॉडल के रूप में प्रतिष्ठित होने के लिए एक-दूसरे को उपलब्ध होते रहे। विविधता बढ़ने लगी। चार्ल्स डार्विन के प्राकृतिक वरण के सिद्धान्त से हम जानते हैं कि विविधता की उपलब्धता प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया को प्रश्रय देती है और नए का प्रादुर्भाव एवम् प्रतिष्ठा होती है। उपलब्ध विविध विकल्पों में से, जो परिवेश से सर्वाधिक अनुकूलित होते हैं, उन्हें प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया अपनाती है। प्राकृतिक चयन की यह प्रक्रिया समाज के विकास को भी समानान्तर रूप से संचालित करती है। प्रकृति की तरह सामाजिक आचार संहिता में भी अपरिवर्तनीय, स्थिर और शाश्वस्त कुछ भी नहीं हुआ करता।

हमारी माँ उस कालखण्ड का प्रतिनिधित्व करती थी जब सिलाई आ तो गई थी, पर प्रतिष्ठित नहीं हुई थी। सिला हुआ कपड़ा पहनना परम्परा को नकारना जैसा था। दीदी के परिधान में ब्लाउज-साया का शामिल होना सहज स्वीकार्य नहीं हुआ था। लोग इसे चरित्र का स्खलन कहते थे। परम्परा से निर्देशित एवम् संचालित समाज नए को सन्देह की दृष्टि से देखता था। उससे डरता था कि समाज के स्थायित्व में दरार पड़ेगी।

पहनावे की भूमिका आवरण के साथ आभरण की भी हो गई। कालक्रम में पोशाक व्यक्तित्व की प्रस्तुति में सौन्दर्य संसाधन के रूप में प्रमुख होता गया। बदन को ढँकने के साथ उघाड़े जाने का समीकरण पोशाक के स्वरूप का निर्द्धारण करने लग गया। भारत भ्रमण पर आए एक विदेशी पर्यटक ने हैरानी जाहिर करते हुए कहा था, 'अजीब है इनका पहनावा, औरतों की टाँगे पूरी तरह ढँकी होती हैं, और पुरुषों की उघरी।' यहाँ एक घटना की चर्चा प्रासंगिक होगी। महात्मा गाँधी के आह्वान पर समाज के विभिन्न तबकों से जिन प्रतिष्ठित लोगों ने असहयोग आन्दोलन में योगदान किया था उनमें पश्चिमी सभ्यता में रंगे पण्डित मोतीलाल नेहरू थे तो परम्परागत ग्रामीण परिवेश से आए बाबू राजेन्द्र प्रसाद भी थे। चम्पारण में निलहे किसानों के मुकदमे की वकालत में ये दोनों ही एक साथ शामिल थे। फुरसत के एक दिन पण्डित मोतीलाल नेहरू ने बाबू राजन्द्र प्रसाद से पूछा, 'आप कपड़े क्यों पहनते हैं?' राजेन्द्र बाबू इस अप्रत्याशित सवाल के लिए प्रस्तुत नहीं थे। उन्होंने कहा, 'बदन ढँकने के लिए।' मोतीलाल जी ने कहा, 'क्या इसे आप सुन्दर तरीके से नहीं पहन सकते?' व्यक्तित्व को निखारने में आभरण की ही तरह पोशाक की भूमिका का संकेत है यह कथोपकथन।

व्यवस्था के सुचारू रूप से प्रभावी होने के लिए स्थायित्व की जरूरत होती है। इसलिए व्यवस्था अपने में बदलाव का प्रतिरोध करती है। परिवेश एवम् संसाधनों की उपलब्धता में परिवर्तन के साथ बदलाव के दबाव उत्पन्न होते रहे हैं, इन दबावों का प्रतिरोध भी होता रहा है। अपने परिवेश से आनेवाली नई संवेदनाओं के दबाव से व्यवस्था की प्रतिरोध की प्रवृत्ति तनाव उत्पन्न करती है। तनाव की प्रक्रिया के द्वारा नई संवेदनाएँ अपनी प्रासंगिकता एवम् औचित्य स्थापित करने की चुनौती से जूझती हैं। अन्ततोगत्वा व्यवस्था अपने लचीलेपन के गुण से संवेदित होती है और नए मूल्य-बोध कायम होते हैं। और अन्त में व्यवस्था के मूल्यों में बदलाव प्रतिष्ठित ही नहीं, सम्मानित एवम् सहज भी होते रहे हैं।

ganganand.jha@gmail.com

पत्रिका गर्भनाल

वर्ष-3, अंक-2 (इंटरनेट संस्करण : 77)
अप्रैल 2013

सम्पादकीय सलाहकार
गंगानन्द झा

परामर्श मंडल
वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र
गूगल से साभार

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

>>4
हिन्दी का अरण्यरोदन

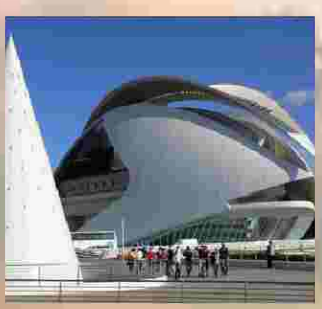

>>14
अविस्मर्णीय सोफिया

>>16
भारतीय रेल और हम

>>18
पश्चाताप से परे

इस अंक में

मन की बात :	शंभुनाथ	4
तथ्य :	डॉ. काजल बाजपेयी	7
शख़्सियत :	मोहन शिवानंद	9
संस्मरण :	मुश्ताक अली खान 'बाबी'	14
शब्द-चित्र :	गंगानन्द झा	16
विचार :	मीरा गोयल	18
बातचीत :	आत्माराम शर्मा	20
नजरिया :	राजकिशोर	26
व्याख्या :	मनोज कुमार श्रीवास्तव	28
चिन्तन :	बृजेन्द्र श्रीवास्तव	38
प्रश्नोत्तरी :	डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता	41
मंथन :	भूपेन्द्र कुमार दवे	42
पंचतंत्र :		44
महाभारत :		47
वेद की कविता :	प्रभुदयाल मिश्र	50
कविता :	उमेश ताम्बी	51
	विष्णु प्रसाद त्रिपाठी	52
	मुनेन्द्र कुमार प्रताप	53
दोहे :	डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा	54
ग़ज़ल :	डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा	55
शायरी की बात :	नीरज गोस्वामी	56
कहानी :	वेद मित्र, एम.बी.ई.	57
किताब :	प्रभुदयाल मिश्र	64
खबर :		65
आपकी बात :		66

शंभुनाथ

जन्म १९ जनवरी १९४९. कलकत्ता विश्वविद्यालय में शिक्षा एवं १९७९ से वहीं अध्यापन. एक दर्जन आलोचना की किताबें, जिनमें प्रमुख हैं साहित्य और जनसंघर्ष, तीसरा यथार्थ, मिथक और आधुनिक कविता, धर्म का दुखांत, संस्कृति की उत्तर कथा (पुरस्कृत) तथा सभ्यता से संवाद. आधा दर्जन से अधिक किताबों का सम्पादन. पूर्व अध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा.

मन की बात

हिन्दी का अरण्यरोदन

हिन्दी का जन्म ही आजाद और लोकतांत्रिक मानसिकता की देन है। इसलिए इसे मानसिक आजादी की भाषा या लोकतंत्र की भाषा के रूप में देखा जाता है। अगर हमारी मानसिक आजादी और हमारा लोकतंत्र सुरक्षित है, तब हिन्दी को आगे बढ़ने और विश्व में सम्मानजनक स्थान पाने से नहीं रोका जा सकता। पर अगर हम मानसिक आजादी खो रहे हों और लोकतंत्र बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मुट्ठी में चला जा रहा हो तो दुनिया की कई दूसरी भाषाओं की तरह हिन्दी का तरह-तरह से संकट में पड़ना, इसका सिकुड़ना या विकृत होना निश्चित है। इन स्थितियों में हमें 'इंडेंजर्ड लैंग्वेज' की अवधारणा का विस्तार करना होगा। दुनिया की तमाम राष्ट्रीय भाषाओं को- जिनमें कई यूरोपीय भाषाएं भी हैं, दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका की भाषाएं भी हैं- और अपनी तमाम भारतीय भाषाओं को और निश्चित रूप से हिन्दी को भी बढ़ते अंग्रेजी-वर्चस्व के बरक्स 'इंडेंजर्ड लैंग्वेजेज' के रूप में देखना चाहिए।

> *हम सिर्फ इस पर गर्व करते हैं कि हिन्दी बोलने-समझने वालों की संख्या चालीस करोड़ से अधिक है। हमें इस संख्या से संतोष न करके देखना है कि हम हिन्दी को अब तक गुणात्मक रूप से कितनी समृद्ध बना पाए हैं।*

हिन्दी लोकचेतना और लोकतंत्र की देन है। यह हम सिद्धों-नाथों से लेकर अमीर खुसरो, विद्यापति और भक्त कवियों से होते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रेमचंद, निराला, अज्ञेय आदि तक देख सकते हैं। इन्होंने हिन्दी को गढ़ा, विकसित किया और लोकप्रिय बनाया। आज मुख्यतः हिन्दी को कौन निर्मित कर रहा है? आज जो मस्त, चुलबुली और दमकती हुई हिन्दी दिखाई देती है, वह पहले से काफी फैली हुई भले नजर आए, हम उससे संतुष्ट नहीं हो सकते। आज सूचना और मनोरंजन की भाषा के रूप में निश्चय ही हिन्दी का प्रसार हुआ है। पर क्या यह दफ्तर, अंतरराष्ट्रीय बाजार, उच्च-स्तरीय वार्ता, उच्च शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान और बहस की भाषा बन पाई है? इसलिए हमें कहना होगा कि भारत में अंग्रेजी-वर्चस्व की वजह से भाषा का लोकतंत्र नहीं है। हिन्दी लोकतंत्र की भाषा सिर्फ तब बनेगी, जब सूचना और मनोरंजन की भाषा से आगे बढ़ कर ज्ञान और संवेदना की भाषा बने।

दक्षिण अफ्रीका की धरती पर ही महात्मा गांधी ने पहली बार साम्राज्यवादी भेदभाव के विरुद्ध 'पैसिव रेजिस्टेंस' शुरू किया था, अपने सत्याग्रह की शक्ति से दुनिया को परिचित

कराया था। उनकी लड़ाई मानवीय आत्मसम्मान, आजादी और लोकतंत्र के लिए ही नहीं थी; राष्ट्रीय भाषाओं की मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए भी थी। गांधी ने भारत में कहा था, 'मैकाले ने जिस शिक्षा की नींव रखी, उसने सबको गुलाम बना दिया है। यदि भारत अंग्रेजी बोलने वाले लोगों का स्वराज्य है, तो निःसंदेह अंग्रेजी ही राष्ट्रीय भाषा होगी। लेकिन अगर भारत करोड़ों भूखों मरने वालों, निरक्षरों और दलितों-अंत्यजों का स्वराज्य है और इन सबके लिए है तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।' अंग्रेजी भले फिलहाल एक अंतरराष्ट्रीय भाषा है, पर पिछले दरवाजे से

> *हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों का एकाधिकारवाद इसके लोकतांत्रिक स्वरूप के लिए खतरनाक है। इसलिए हिन्दी के जातीय स्वरूप की रक्षा एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि इसके बिना यह विश्व में सम्मानजनक स्थान नहीं पा सकती।*

विश्व भर में यथार्थतः यही 'नेशनल लैंग्वेज' बनती जा रही है और जीवन में चारों तरफ छाती जा रही है- हम ऐसा कभी होने नहीं देंगे। हम हिन्दी ही नहीं, सभी भारतीय भाषाओं के आत्मसम्मान के लिए लड़ेंगे। जोहान्सबर्ग के विश्व हिन्दी सम्मेलन की सार्थकता इसी में है कि यह अंग्रेजी-वर्चस्व के विरुद्ध लड़ाई का एक प्रेरणास्रोत बने।

विश्व हिन्दी सम्मेलन निश्चय ही हिन्दी की दशा और भावी दिशा पर सोचने के लिए था। यह भूलना नहीं होगा कि हिन्दी का भविष्य पहले भी भारतीय भाषाओं के भविष्य से जुड़ा हुआ था और आज भी जुड़ा है। हमारी पहली और आखिरी मांग यह होनी चाहिए कि हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का सशक्तीकरण किया जाए। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के सशक्तीकरण का अर्थ है भारतीय जनता का सशक्तिकरण, लोकतंत्र को मजबूत बनाना। हम कहना चाहते हैं कि स्त्रियों के सशक्तीकरण, दलितों के सामाजिक न्याय, किसानों और आदिवासियों के सशक्तीकरण की तरह ही भारतीय भाषाओं का, हिन्दी का सशक्तीकरण जरूरी है।

लोकतंत्र में हिन्दी कहां है, किस दशा में है? हिन्दी में लोकतंत्र कितना है, किस दशा में है? इन सवालों के सामने अगर हम-आप खड़े हों, हमारे भीतर रूह होगी तो वह कांप जाएगी। 'लोकतंत्र में हिन्दी' इस समय भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' है और हिन्दी में लोकतंत्र, प्रेमचंद से उदाहरण लेकर कहें तो, 'ठाकुर का कुआं' है। इसलिए बाहर अंग्रेजी-वर्चस्व से लड़ाई है तो हिन्दीवालों को अपने भीतर छिपे सामंतवाद से भी कम नहीं लड़ना होगा।

गांधी ने कहा था, 'सादा जीवन, उच्च विचार'। आज उसकी जगह छाता जा रहा है 'कृत्रिम जीवन, निम्न विचार'। आज चारों तरफ वस्तुएं ही वस्तुएं हैं और विचार की कमी हो गई है।

हिन्दी बाजार की भाषा बन चुकी हो, पर इसे लोकतंत्र की भाषा बनाना बाकी है। हिन्दी लोकतंत्र की भाषा कैसे बने? हिन्दी में अंग्रेजी के कुछ चमकीले शब्द आ जाने से या हिन्दी के इंग्लिश बन जाने भर से यह लोकतांत्रिक नहीं हो सकती। हिन्दी जिन स्थानों पर अपनाई जा रही है, बढ़ रही है, वहां की स्थानीय भाषाओं-संस्कृतियों के तत्त्व उसमें घुले-मिलें, यह हिन्दी का लोकतंत्र है।

हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों का एकाधिकारवाद इसके लोकतांत्रिक स्वरूप के लिए खतरनाक है। इसलिए हिन्दी के जातीय स्वरूप की रक्षा एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि इसके बिना यह विश्व में सम्मानजनक स्थान नहीं पा सकती।

दरअसल, इस समय अंग्रेजी खुद ही खोखली नहीं होती जा रही है, यह दुनिया की सारी भाषाओं और लोगों के जीवन को खोखला बना रही है। इसलिए हिन्दी को लोकतंत्र की भाषा बनाने का अर्थ है, इसे कैसे राष्ट्रीय जन-जीवन का आईना बनाया जाए। हम इसे बाजार की जेरॉक्स कॉपी बनते नहीं देख सकते। हम चाहते हैं कि इसे लोकतंत्र के तीन खंभों की भाषा बनाने के साथ-साथ उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया जाए। यह शर्म की बात मानी जानी चाहिए कि आज भी आजादी के पैंसठ साल बाद भारत में उच्च शिक्षा की भाषा सिर्फ अंग्रेजी है।

हम सिर्फ इस पर गर्व करते हैं कि हिन्दी बोलने-समझने वालों की संख्या चालीस करोड़ से अधिक है। हमें इस संख्या से संतोष न करके देखना है कि हम हिन्दी को अब तक गुणात्मक रूप से कितनी समृद्ध बना पाए हैं। हम इसे संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने का स्वप्न देखते रहे हैं, इसे विश्व-भाषा बनाने की फिक्र है। इस सवाल पर विचार कीजिए, क्या हिन्दी में कोई अद्यतन विश्वकोश है? हिन्दी पट्टी की अपनी उन्वास

भाषाएं, उपभाषाएं और बोलियां हैं। इन बोलियों के अद्भुत अंतर्ध्वनि वाले शब्द कुछ दशकों से गुम होने लगे हैं और बीस-पचीस सालों में, लगता है, विलुप्त हो जाएंगे। क्या हिन्दी की जड़ों को बचाने के लिए उन्वास खंडों में हिन्दी लोक शब्दकोश हम बना पाए हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि हिन्दी के एक सरकारी संस्थान में लगभग छह साल पहले 'लघु हिन्दी विश्वकोश' की योजना उस समय के मानव संसाधन विकास मंत्री की उपस्थिति में स्वीकृत कराके तेजी से शुरू कर दी गई थी। काफी काम हुआ था, पर पिछले तीन सालों से सब ठप है या यह प्राथमिकता में नहीं है। अगर हिन्दी को गुणात्मक रूप से समृद्ध करना हम जरूरी समझते हों, अगर जरूरी मानते हों कि हिन्दी में इन्साइक्लोपीडिया, हिन्दी लोक शब्दकोश बनने चाहिए तो ये चीजें भी विश्व हिन्दी सम्मेलन की मुख्य चिंताओं में होनी चाहिए।

यह समझने की जरूरत है कि लोकतंत्र में जो भी शक्ति आती है, वह राष्ट्रीय भाषाओं की उन्नति से आती है, जिनमें हिन्दी प्रमुख है। इस समय लोकतंत्र अंग्रेजी की मुट्ठी में है और अंग्रेजी विदेशी वित्तीय पूंजी की मुट्ठी में है। अगर हम सोचते हैं कि लोकतंत्र में आम लोगों की हिस्सेदारी बढ़े तो इसके लिए जरूरी है कि हिन्दी की भूमिका को विस्तार मिले। हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाएं पॉवर ग्रिड की तरह हैं, हमारी संस्कृति की ही नहीं, हमारी जातीय आत्म-पहचान और विकास की भी। अगर हिन्दी का पॉवर ग्रिड फेल हुआ तो समझना चाहिए संपूर्ण भारतीय जीवन में अंधकार छा जाएगा। कृत्रिम रोशनी के कुछ छोटे-छोटे द्वीप भले झलमलाएं! मुश्किल यह है कि वैश्वीकरण के जमाने में एक इतना बड़ा सांस्कृतिक आक्रमण है, पर इससे लोग डरते नही हैं। वे अब डरते हैं सिर्फ भूत-प्रेत की फिल्मों से। और गर्व क्या अब तो शर्म भी नहीं है।

मीडिया के लोगों को इस पर सोचना चाहिए कि लोकतंत्र का आज चौथा खंभा कौन है- मीडिया या बाजार। संभवत: अब मीडिया की जगह बाजार लोकतंत्र का चौथा खंभा बनता जा रहा है, जो खुद पत्रकारों और संपूर्ण मीडिया जगत के लिए एक चुनौतीपूर्ण मामला है। हिन्दी पत्रकारिता और मीडिया का एक गौरवशाली राष्ट्रीय इतिहास है। एक समय हिन्दी पत्रकारिता जब हिन्दी को बना-बढ़ा रही थी, वह अतीत के दकियानूसी विचारों और पश्चिम के अंधानुकरण से लड़ रही थी। आज मीडिया 'पेड न्यूज' से आक्रांत है। हिन्दी का जो कुछ श्रेष्ठ और सुंदर है, अब वह बिग मीडिया से बहिष्कृत है। पत्रकार का मूल्य इससे आंका जाता है कि वह कितनी अधिक बिकाऊ खबर ले आता है। निश्चय ही हिन्दी आज मीडिया और विज्ञापन की प्रधान भाषा है। हिन्दी के

> *विश्व हिन्दी सम्मेलन को एक ऐसा अवसर समझना चाहिए, जब हम मिले-जुलें, समस्याओं को पहचानें, आपस में बैठ कर समस्याओं के समाधान निकालें, दूरियां मिटाएं और यह सोचें कि हिन्दी के लिए और क्या किया जा सकता है। चीरफाड़ जरूरी है, पर सिर्फ चीरफाड़ नहीं।*

बिना आम उपभोक्ता तक पहुंचना मुश्किल है। मगर इस सवाल पर सोचना होगा कि मीडिया हिन्दी पाठक या दर्शक के दिमाग का कितना 'रेजिमेंटेशन' कर रहा है और उसे कितना स्वाधीन बना रहा है। मीडिया की बाजारू भाषा में जीवन का मजा है, पर जीवन का सौंदर्य नहीं है।

विश्व हिन्दी सम्मेलन में इस पर गहरी चिंता व्यक्त की जानी चाहिए कि हिन्दी को हिन्दी क्षेत्र के शिक्षित लोगों की जितनी ताकत मिलनी चाहिए, उतनी नहीं मिल रही है। विश्व बांग्ला सम्मेलन हर साल होता है। बंगाल के बुद्धिजीवी, समाचार-पत्र, व्यापारी सभी उसका अभिनंदन करते हैं। दूसरी भारतीय भाषाओं के विदेश में बसे लोगों ने भी अपनी भाषा-संस्कृति नहीं छोड़ी है। हिन्दी के लोग ही इतने उदासीन क्यों हैं, वे देश में और विदेशों में हिन्दी के लिए आगे क्यों नहीं आते? एक अरण्यरोदन-सा कहीं हो जाता है विश्व हिन्दी सम्मेलन।

विश्व हिन्दी सम्मेलन को एक ऐसा अवसर समझना चाहिए, जब हम मिले-जुलें, समस्याओं को पहचानें, आपस में बैठ कर समस्याओं के समाधान निकालें, दूरियां मिटाएं और यह सोचें कि हिन्दी के लिए और क्या किया जा सकता है। चीरफाड़ जरूरी है, पर सिर्फ चीरफाड़ नहीं। हम यह देखें कि कैसे हिन्दी की सरकारी संस्थाएं हिन्दी की कब्रें न बनने पाएं। इस पर सोचें कि कैसे हर साल विश्व हिन्दी सम्मेलन हो- एक साल भारत में और एक साल विदेश में। कैसे हम विश्व हिन्दी सम्मेलन को एक ऐसी जगह बनाएं, जहां हिन्दी से जुड़ी सांस्कृतिक विविधता की उच्च झलक हो। विश्व हिन्दी सम्मेलन विदेशी शहरों में महज घूम-फिर आने का मामला नहीं है, यह एक संकल्प से भर जाने का मामला है- इस सम्मेलन का प्रतीक गांधी का चरण चिह्न यही कहता था। यह बौद्धिक साम्राज्यवाद लड़ने का आह्वान करता है। ■

जनसत्ता से साभार

डॉ. काजल बाजपेयी
२७ नवंबर १९७७ को दिल्ली में जन्म। दिल्ली विश्वविद्यालय से पीएचडी (हिंदी), एम.फिल (हिंदी) एवं एमए (हिंदी)। अनुवाद में एकवर्षीय स्नातकोत्तर डिप्लोमा। जर्मन विदेशी भाषा में एकवर्षीय सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम। नामी पत्र-पत्रिकाओं में आलेखों का प्रकाशन। सम्प्रति - सी-डैक, पुणे में वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी के रूप में कार्यरत।
सम्पर्क : kajaldelhi2001@gmail.com

भारतीय सिनेमा और हिंदी

भारतीय सिनेमा आरंभ से ही एक सीमा तक भारतीय समाज का आईना रहा है जो समाज की गतिविधियों को रेखांकित करता आया है। पिछले पांच दशकों की बात करें तो देखने को मिलेगा कि भारतीय सिनेमा ने शहरी दर्शकों को ही नहीं गांव के दर्शकों को भी प्रभावित किया है। टेलीविजन के प्रसार के कारण अब विश्व के प्रत्येक भूभाग में हिन्दी फिल्मों तथा हिन्दी फिल्मी गानों की लोकप्रियता सर्वविदित है। आज हिंदी की व्यापक लोकप्रियता और इसे संप्रेषण के माध्यम के रूप में मिली आम स्वीकृति किसी संवैधानिक प्रावधान या सरकारी दबाव का परिणाम नहीं है। मनोरंजन और फिल्म की दुनिया ने इसे व्यापार और आर्थिक लाभ की भाषा के रूप में जिस तरह विस्मयजनक रूप से शनैः शनैः स्थापित किया, इसने आज इसके पारंपरिक विरोधियों व उनके दुराग्रहों का मुंह बंद कर दिया है।

भाषा-प्रसार उसके प्रयोक्ता-समूह की संस्कृति और जातीय प्रश्नों को साथ लेकर चला करता है। भारतीय सिनेमा निश्चय ही हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में अपनी विश्वव्यापी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। उनकी यह प्रक्रिया अत्यंत सहज, बोधगम्य, रोचक, संप्रेषणीय और ग्राह्य हैं। हिन्दी यहाँ भाषा, साहित्य और जाति तीनों अर्थों में ली जा सकती है। जब हम भारतीय सिनेमा पर दृष्टिपात करते हैं तो भाषा का प्रचार-प्रसार, साहित्यिक कृतियों का फिल्मी रूपांतरण, हिंदी गीतों की लोकप्रियता, हिन्दी की उपभाषाओं, बोलियों का सिनेमा और सांस्कृतिक एवं जातीय प्रश्नों को उभारने में भारतीय सिनेमा का योगदान जैसे मुद्दे महत्वपूर्ण ढंग से सामने आते हैं। हिन्दी भाषा की संचारात्मकता, शैली, वैज्ञानिक अध्ययन, जन संप्रेषणीयता, पटकथात्मकता के निर्माण, संवाद लेखन, दृश्यात्मकता दृश्य भाषा, कोड निर्माण, संक्षिप्त कथन, बिम्ब धर्मिता, प्रतीकात्मकता, भाषा-दृश्य की अनुपातिकता आदि मानकों को भारतीय सिनेमा ने गढ़ा है। भारतीय सिनेमा हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति का लोकदूत बनकर इन तक पहुँचने की दिशा में अग्रसर है।

> *भारतीय सिनेमा ने शहरी दर्शकों को ही नहीं गांव के दर्शकों को भी प्रभावित किया है। टेलीविजन के प्रसार के कारण अब विश्व के प्रत्येक भूभाग में हिन्दी फिल्मों तथा हिन्दी फिल्मी गानों की लोकप्रियता सर्वविदित है।*

दरअसल हमेशा यह कहना कठिन होता है कि समाज और समय सिनेमा में प्रतिबिम्बित होता है या सिनेमा से समाज प्रभावित होता है। दोनों ही बातें अपनी-अपनी सीमाओं में सही हैं। कहानियां कितनी भी काल्पनिक हों कहीं तो वो इसी समाज से जुड़ी होती हैं। यही सिनेमा में भी अभिव्यक्त होता है। लेकिन हां बहुत बार ऐसा भी हुआ है कि सिनेमा का असर हमारे युवाओं और बच्चों पर हुआ है सकारात्मक और नकारात्मक भी। अतः हर माध्यम के अपने प्रभाव होते हैं समाज पर।

भारतीय सिनेमा के आरंभिक दशकों में जो फिल्में बनती थीं उनमें भारतीय संस्कृति की महक रची बसी होती थी तथा विभिन्न आयामों से भारतीयता को उभारा जाता था। बहुत समय बाद पिछले दो वर्षों में ऐसी दो फिल्में देखी हैं जिनमें हमारी संस्कृति की झलक थी। देश के आतंकवाद पर भी कुछ अच्छी सकारात्मक हल खोजतीं फिल्में आई हैं।

आज भारत साल में सर्वाधिक फिल्में बनाने में अग्रणी है। माना कि अत्याधुनिक उपकरणों, उत्कृष्ट प्रस्तुति के साथ यह नए युग में पहुंच चुका है, लेकिन गुणवत्ता के मामलों में भारतीय सिनेमा को अभी और भी दूरी तय करनी है। साथ ही यह तय करना है कि समाज के उत्थान में उसकी क्या भूमिका हो अन्यथा टेलीविज़न उसे पीछे छोड़ देगा।

भाषा स्थानांतरण दुनिया के उत्कृष्ट कार्यक्रमों को हिंदी के माध्यम से रातों-रात करोड़ों नए दर्शक दे रहा है। यह स्वतंत्र बाज़ार और प्रतिस्पर्धा का आज का स्वीकृत खेल है। एक बात अवश्य है कि एक ओर हिंदी भाषा बाज़ार और मुनाफ़े की कुंजी बन रही है।

हिंदी सिनेमा की चर्चित अभिनेत्री कैटरीना को ही देख लें। उसने सफलता के लिए कठोर परिश्रम किया। कैटरीना इस बात से भी अच्छी तरह परिचित है कि उसे हिंदी फ़िल्मों में काम करना है तो इस भाषा को सीखना होगा वरना वह चेहरे पर भाव कैसे ला पाएगी। उसने हिंदी सीखी और अब वह हिंदी अच्छी तरह समझ लेती है। अब कैटरीना सशक्त भूमिकाएँ भी निभा रही है। निर्देशक भी अब कैटरीना पर भरोसा करने लगे हैं। और ये सब हुआ है हिंदी का ज्ञान प्राप्त करके।

आज हालीवुड के फिल्म निर्माता भी भारत में अपनी विपणन नीति बदल चुके हैं। वे जानते हैं कि यदि उनकी फिल्में हिंदी में रूपांतरित की जाएगी तो यहाँ से वे अपनी मूल अँग्रेज़ी में 'निर्मित चित्रों' के प्रदर्शन से कहीं अधिक मुनाफ़ा कमा सकेंगे। हालीवुड की आज की वैश्विक बाज़ार की परिभाषा में हिंदी जानने वालों का महत्व सहसा बढ़ गया है। भारत को आकर्षित करने का उनका अर्थ अब उनकी दृष्टि में

> हिंदी सिनेमा की चर्चित अभिनेत्री कैटरीना को ही देख लें। उसने सफलता के लिए कठोर परिश्रम किया। कैटरीना इस बात से भी अच्छी तरह परिचित है कि उसे हिंदी फ़िल्मों में काम करना है तो इस भाषा को सीखना होगा वरना वह चेहरे पर भाव कैसे ला पाएगी।

हिंदी भाषियों को भी उतना ही महत्व देना हैं। परन्तु आज बाज़ार की भाषा ने हिंदी को अंग्रेज़ी की अनुचरी नहीं सहचरी बना दिया है।

आज टी.वी. देखने वालों की कुल अनुमानित संख्या जो लगभग १० करोड़ मानी गई है उसमें हिंदी का ही वर्चस्व है। आज हम स्पष्ट देख रहे हैं कि आर्थिक सुधारों व उदारीकरण के दौर में निजी पहल का जो चमत्कार हमारे सामने आया है इससे हम मानें या न मानें हिंदी भारतीय सिनेमा के माध्यम से दुनिया भर के दूरदराज़ के एक बड़े भू-भाग में समझी जाने वाली भाषा स्वतः बन गई है।■

मोहन शिवानंद

केरल में जन्म। आरंभ कार्टूनिस्ट के तौर पर हुआ और पहले कार्टून शंकर्स वीकली पत्रिका में छपे (१९७५)। बाद में टाइम्स आफ़ इंडिया मुंबई से संबद्ध हुए और समूह के अनेक प्रकाशनों में रचनाएँ प्रकाशित हुईं। १९८३ से रीडर्स डाइजेस्ट के संपादन विभाग में पहुँचे, जहाँ धीरे-धीरे संपादक बने। अनेक कला प्रदर्शनियाँ भी आयोजित हुई हैं।

सम्पर्क : msivanand@gmail.com

करामाती कोशकार

मंज़िल दूर होती गई, इरादा मज़बूत होता गया

प्रकाशनालय दिल्ली प्रेस का वह नौजवान पत्रकार अरविंद कुमार हिंदी कहानी का इंग्लिश अनुवाद करते-करते बुरी तरह उलझा था उसे उपयुक्त इंग्लिश शब्द नहीं सूझ रहे थे। यह था १९५२ में अप्रैल महीने का तपता गरम दिन। पास ही बैठा था एक इंग्लिश फ्रीलांसर। अरविंद की समस्या भाँप कर वह उसे निकट ही कनाट प्लेस में किताबों की एक दुकान तक ले गया और एक किताब उसे पकड़ा दी। यह था ठीक सौ साल पहले लंदन में छपा लंबे से नाम वाला 'थिसारस आफ़ इंग्लिश वर्ड एण्ड फ्रैजेज़ क्लासिफ़ाइड एण्ड अरेंज्ड सो ऐज़ टु फ़ैसिलिटेट द ऐक्सप्रैशन आफ़ आइडियाज़ एण्ड ऐसिस्ट इन लिटरेररी कंपोज़ीशन'। इस का हिंदी अनुवाद कुछ इस प्रकार होगा 'साहित्यिक रचना और विचारों की अभिव्यक्ति में सहायतार्थ सुनियोजित और संयोजित इंग्लिश शब्दों और वाक्यांशों का थिसारस।'

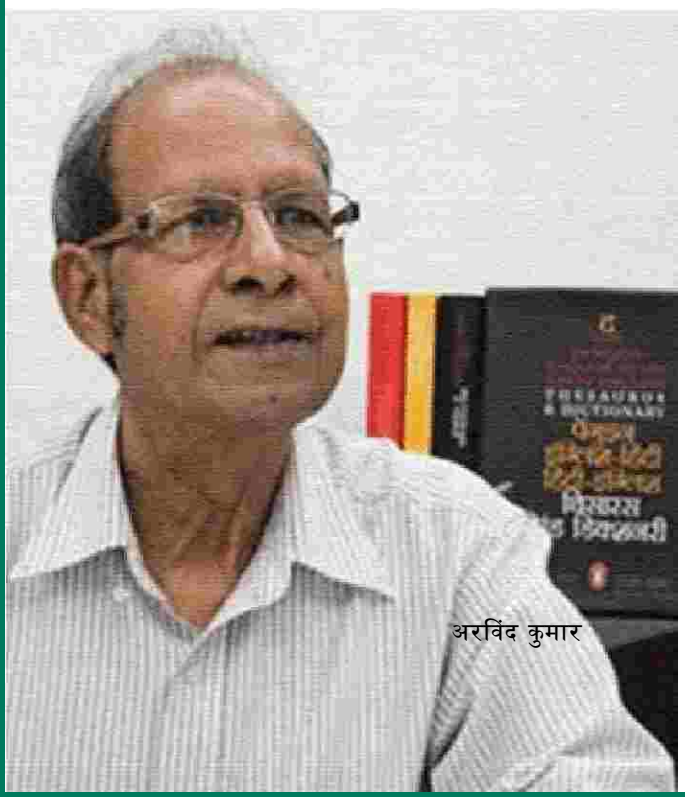

अरविंद कुमार

रोजटस थिसारस नाम से मशहूर इस किताब के पन्ने पलटते ही अरविंद पर उस का जादू चल गया। किताब तुरंत ख़रीद ली गई।

अरविंद कुमार की उस समय उम्र थी बस बाईस साल। पिछले सात साल से पिता की अपर्याप्त आय में थोड़ा बहुत जोड़ने के लिए वह यहीं काम करता आ रहा था। दसवीं पास था। शुरुआत की छपे टाइपों को केसों में वापस डालने (यानी डिस्ट्रीब्यूट करने) के काम से। कंपोज़ीटर, कैशियर, टाइपिस्ट, प्रूफ़रीडर, हिंदी पत्रिका सरिता में उप संपादक होता होता वह इतने कम समय में इंग्लिश पत्रिका कैरेवान में उप संपादक बन चुका था। शाम के समय ईवनिंग कालिज में पढ़ता एम.ए. (इंग्लिश) की तरफ़ बढ़ रहा था।

वह अनोखी किताब क्या हाथ लगी कि हाथ से छूटती ही नहीं थी। उसकी हमजोली बन गई, हर दम साथ रहती। ज़रूरत पड़ने पर तो उस की मदद लेता ही, बेज़रूरत भी पन्ने पलटता शब्द पढ़ता रहता। बार-बार चाह उठती - हिंदी में भी कुछ ऐसा हो। भारत में कोशकारिता की परंपरा पुरानी है। प्रजापति कश्यप का १८०० वैदिक शब्दों का संकलननिघंटु था, अमर सिंह का ८,००० शब्दों वाला प्रसिद्ध थिसारस अमर कोश था। हिंदी में ऐसा कुछ नहीं था।

१९६३ तक अरविंद दिल्ली प्रैस के सभी प्रकाशनों का प्रभारी सहायक संपादक बन गया था। टाइम्स आफ़ इंडिया समूह की संपादक का पद देने की पेशकश सीधे सादे सरल चित्त निरभिमान पत्रकार के लिए सुनहरी मौका थी - मुंबई से हिंदी फ़िल्म पत्रिका माधुरी आरंभ करना। 'फ़िल्मों की जानकारी मुझे कुछ कम ही थी', वह बेबाक बताता है। 'मेरे लिए यह बड़ी चुनौती थी।' पहले अंक से ही माधुरी अग्रतम हिंदी फ़िल्म पत्रिका बन गई।

दस साल बाद २६ दिसंबर १९७३। सुबह की सैर पर अरविंद ने अपनी सोई आकांक्षा का ज़िक्र पत्नी कुसुम से किया। 'अभी तक तो हिंदी में थिसारस बना नहीं, मुझे ही बनाना होगा। हिंदी को, समाज को इसकी बेहद ज़रूरत है।

इस के लिए मुझे नौकरी भी छोड़नी पड़ सकती है। तुम दोगी मेरा साथ?'

दोनों बच्चे स्कूल जाते थे, जमा जमाया काम था, दक्षिण मुंबई के एक प्रतिष्ठित भाग में फ्लैट था। काम जोखिम भरा था। अब तक किसी ने इस में हाथ डालने की हिम्मत नहीं की थी।

'लेकिन में जीवनभर धर्मेन्द्र और हेमामालिनी के बारे में लिखते-छापते रहने के लिए तो पैदा नहीं हुआ हूँ ना', अरविंद ने कहा।

'ठीक है', कुसुम ने बेहिचक जवाब दिया, 'पर हमें हर कदम सोच समझ कर उठाना होगा।' तय हुआ कि माधुरी छोड़ने का सही समय लगभग पाँच साल बाद होगा। कार के लिए लिया कर्ज़ तब तक चुक चुका होगा। दिल्ली वापस जाने पर बच्चों की पढ़ाई पर बुरा भी असर नहीं पड़ेगा।

'काम में बस दो साल लगेंगे', अरविंद ने कहा। 'बाद में कोई और काम तो मिल ही जाएगा।' अरविंद का सोचना था कि 'रोजट' के मॉडल पर हिंदी पर्याय और विपर्याय शब्द डालने से काम चल जाएगा। यह तो बाद में पता चला कि यह माडल हिंदी के काम का नहीं था।

भावी आर्थिक स्थिति का कोई भरोसा नहीं था। हर तरफ़ कतरब्योंत की जाने लगी। सादा खाना और सादा हो गया। मँहगी चीज़बस्त की ख़रीद टलने लगी। सोफ़ासैट ख़रीदने का इरादा तर्क़कर दिया। जब जहाँ सस्ते कपड़े लत्ते मिले ले लिए। क्या पता फिर कब मौका मिले। इसी तरह जितने भी जिस तरह के कोश 'हिंदी के इंग्लिश के' मिले ख़रीद लिए। हर तरह का संदर्भ साहित्य चाहिए था।

भावी आर्थिक स्थिति का कोई भरोसा नहीं था। हर तरफ़ कतरब्योंत की जाने लगी। सादा खाना और सादा हो गया। मँहगी चीज़बस्त की ख़रीद टलने लगी। सोफ़ासैट ख़रीदने का इरादा तर्क़ कर दिया।

अप्रैल १९७ में काम का अभ्यास आरंभ हुआ। शब्द संकलन के लिए जिस तरह के कार्ड चाहिए थे, बनवा लिए थे। धार्मिक भावना से नहीं, महत्वपूर्ण काम की औपचारिक शुरूआत के लिए मुंबई के पास का तीर्थस्थान नासिक चुना गया। गाड़ी में कार्ड और कुछ कोश लादकर पूरे परिवार ने

कोशकार परिवार : बाएँ से डॉ. सुमीत कुमार, कुसुम, अरविंद, मीता लाल

टाइम्स आफ़ इंडिया के गैस्ट हाउस में डेरा डाला, सुबह सबेरे गोदावरी में स्नान किया, तांबे के लोटे पर तारीख़ अंकित कराई, पहला कार्ड बनाया, जिस पर चारों सदस्यों ने विधिवत दस्तख़त किए। और मुंबई लौट कर अपने सपने को पूरा करने का अभ्यास शुरू किया।

माधुरी छोड़ते समय (मई १९७८) बेटा सुमीत मैडिकल कालिज ज्वाइन करने वाला था, बेटी मीता ने आठवीं पास कर ली थी। सौ से अधिक कोशों की संपत्ति लिए परिवार अपने घर दिल्ली (माडल टाउन) पहुँचा। उस में १४ गुणा १४ फ़ुट की छह फ़ुट ऊँची गरमी में बेहद गरम और सर्दी में बेहद ठंडी होने वाली मियानी काम का कमरा बनी। अरविंद और कुसुम ने फिर से ट्रेओं में रोजट के माडल के अनुरूप सभी के शीर्षकों उपशीर्षकों की संख्या वाले कार्ड करीने से लगा दिए।

मुंबई से ही कई ऐसे शब्द मिलने लगे थे जिन के लिए रोजट में जगह नहीं थी। दिल्ली में तो यह समस्या और भी मुँह बाए खड़ी हो गई। पहले से ही क्रमांकित कार्डों को आगे-पीछे उलट-पलट कर हज़ारों नई कोटियों के लिए संख्याएँ जोड़ना संभव नहीं था।

अरविंद समझाते हैं : 'रोजट के माडल में हर संकल्पना का एक सुनिश्चित स्थान है। उस का आधार वैज्ञानिक है। लेकिन भाषा जो भी हो, वैज्ञानिक नहीं होती। नए-नए शब्द विज्ञान के आधार पर नहीं, मानसिक संबंधों के आधार पर, कई बार बस यूँ ही या सामाजिक अवधारणाओं पर बनते हैं। इंग्लिश के 'रेनी डे' का मुख्य अर्थ है 'कठिन समय', हमारे

यहाँ बरसाती दिन सुहावना होता है, कविता का विषय है, रोमांस का काल है।'

बात आगे बढ़ाते वह कहते हैं : 'विज्ञान में 'गेहूँ' एक तरह की घास है, आम आदमी के लिए वह खाद्य अनाज है। संस्कृत से ले कर हिंदी ही नहीं सभी भारतीय भाषाओं के अपने अलग सामाजिक संदर्भ हैं। एक और समस्या यह है कि काव्य की भाषाएँ होने के कारण हमारे यहाँ इंग्लिश के मुकाबले पर्यायों की भरमार है। 'हलदी' के लिए अरविंद को १२५ पर्याय मिले! 'हैल्मेट' के लिए ३२।

हमारी अपनी अलग सामाजिक सांस्कृतिक संकल्पनाएँ हैं। इंग्लिश में 'ईवनिंग इन पैरिस' पैरिस की कोई भी शाम है, हमारे यहाँ शामे अवध की रौनक़ बेमिसाल रंगीन होती थी, सुबहे बनारस में पूजा पाठ शंखनाद का पावन आभास है, तो शबे मालवा सुहावनी ठंडक की प्रतीक है।

एक बार अरविंद का दिल्ली से लगभग तीस-पैंतीस किलोमीटर दूर मुरादनगर जाना हुआ। वहाँ एक कारीगर के मुँह से नया शब्द सुना : बैटरा! - बैटरी का पुंल्लिंग। मतलब

दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित अरविंद कुमार को शलाका सम्मान का फलक भेंट करते हुए। साथ में हैं प्रख्यात कवि श्री अशोक चक्रधर।

था ट्रैक्टर ट्रक आदि में लगने वाली बड़ी बैटरी। हिंदी इसी तरह के सैकड़ों अड़बंगे लेकिन बात को सही तरह कहने वाले नए शब्दों से भरी है। 'इस का अर्थ था कि हिंदी थिसारस बनाना जितना मैंने सोचा था, उस से दस गुना कठिन था। पीछे मुड़ कर देखता हूँ तो दस गुना ज़्यादा दिलचस्प भी।'

ऐसे दसियों हज़ार शब्द खोजने और सम्मिलित करने के लिए अरविंद को प्राचीन संस्कृति ही नहीं समसामयिक समाज में भी पैठना पड़ा। संदर्भों और शब्द-संबंधों के इन दरीचों-गलियारों में भटकते गुज़रते शब्दों को समझते-परखते, उन के लिए संकलन में उपयुक्त जगह तलाशते या बनाते संकल्पनाओं और कार्डों की संख्या बढ़ती जा रही थी। दोनों सुबह पाँच बजे काम में जुट जाते, शाम तक लगे रहते।

> *रीडर्स डाइजेस्ट का हिंदी संस्करण 'सर्वोत्तम' निकालने का काम अरविंद ने पाँच साल के लिए स्वीकार कर लिया। 'डाइजेस्ट में मेरा कार्यकाल बड़े काम का सिद्ध हुआ। हर छपे शब्द की जाँच पड़ताल, हर तथ्य की सत्यता पर बल - एक नया अनुभव था।*

और तब आया १९७८ का सितंबर महीना। साथ लाया जमुना नदी की भयंकर बाढ़। एक-मंज़िला घर बाढ़ की चपेट में आ गया। कुछ बचा तो मियानी में रखे कोश और कार्ड। 'यह संकेत था कि मुझे इसी में लगे रहना है।' बाढ़ के बाद वह घर बेच दिया गया। काम का तबादला दिल्ली से गाज़ियाबाद की नवविकसित कालोनी चंद्रनगर-सूर्यनगर हो गया। अरविंद और कुसुम अब भी वहीं रहते हैं।

आय कुछ थी नहीं। प्रोविडैंट फ़ंड से जो पैसा मिला था, उसी पर सूद के सहारे गुज़र हो रही थी। वह भी कम होता जा रहा था। उस का कुछ भाग नई जगह मकान के लिए ज़मीन ख़रीदने में निकल गया। अब और पैसा ज़रूर ही चाहिए था। संयोगवश रीडर्स डाइजेस्ट का हिंदी संस्करण 'सर्वोत्तम' निकालने का काम अरविंद ने पाँच साल के लिए स्वीकार कर लिया। 'डाइजेस्ट में मेरा कार्यकाल बड़े काम का सिद्ध हुआ। हर छपे शब्द की जाँच पड़ताल, हर तथ्य की सत्यता पर बल - एक नया अनुभव था। यही नहीं, संपादन का अपना कौशल। किसी भी रचना के बार-बार नए ड्राफ़्ट बनाना, माँजना, सँवारना, सब कुछ अनोखा। फिर हिंदी अनुवाद इस तरह करना कि हर लेख मौलिक लगे! मूल रचना का सच्चा दर्पण, हर शब्द सही सटीक। सब कुछ शिक्षाप्रद था।'

१९८३ में जब मैंने डाइजेस्ट ज्वाइन किया तो वह दिल्ली कार्यालय के अध्यक्ष थे। बाद में मैंने सहयोगियों से सुना कि वह हम संपादकों के बीच अनोखे स्कालर-संपादक थे।

रोजट का माडल फ़ेल हो गया तो उन्होंने ने अमर सिंह का माडल आज़माया। पर वह बुरी तरह आउट-आफ़-डेट पुराणकालीन था। उस के मुख्य भाग का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था थी। उसमें 'सिंह' का संदर्भ क्षत्रिय वर्ण से था, 'गाय' का वैश्य से! 'संगीत' तो नैसर्गिक गतिविधि था, लेकिन 'गायक' था नीच शूद्र!

१९९० तक उनके पास ७० ट्रेओं में साठ हज़ार कार्डों पर लगभग ढाई लाख शब्द थे। तात्कालिक विषयों की सभी ट्रे मेजों पर, बाकी दाहिने बाएँ रैकों के ख़ानों में। लगभग वैसे ही जैसे कंपोज़ीटर के टाइपों के केस रखे रहते थे, अरविंद के लड़कपन के दिनों में।

कुसुम का काम था हिंदी कोश में में 'अ' से 'ह' तक जाते-जाते वस्तुओं, वृक्षों, देवी-देवताओं के (मुख्यतः संज्ञाओं) के शब्द लिखना। अरविंद का काम था भाववाचक संज्ञाओं, अमूर्त विषयों, क्रियाओं, विशेषणों, क्रिया विशेषणों, मुहावरों को सँभालना। आसपास की ट्रेओं का क्रम कुछ इस तरह का था- ब्रह्मांड, तारक पिंड, सौर मंडल या फिर रोटी, पराँठे, निरामिष व्यंजन, अंडा मांस व्यंजन, अचार चटनी, मसाले या जीवन, मृत्यु, अमृत, विष, मारण, हत्या, हिंसा, अहिंसा, दृश्य,अनुभूति, दृष्टि उपकरण, अवलोकन, प्रकाश, अंधकार। इन में किसी भी मुख्य कोटि की उपकोटियों की किसी बेल सरीखी शाखाएँ-उपशाखाएँ निकलती हैं, जैसे अवलोकन से अवलोकन शैली, तिरछी चितवन, सरसरी नज़र... हिंदी में इन सब के कई पर्याय और मुहाविरे भी होते हैं, सब कुछ अंतहीन सा था। ट्रायल एण्ड ऐरर करते-करते अरविंद का अपना माडल निकलने में चौदह साल निकल गए! और यह रोजट के माडल से बिल्कुल भिन्न, पूरी तरह स्वतंत्र, मानव मन के सहज परस्पर संबंधों पर आधारित।

अब तक अरविंद का बेटा सुमीत सर्जन बन चुका था और दिल्ली के एक सरकारी अस्पताल में था। एक दिन पति-पत्नी उस से मिलने गए। अरविंद को सीने में दर्द हुआ। हार्ट अटैक था। सुमीत ने उन्हें तत्काल आईसीयू में दाख़िल करा दिया। 'मुझे पता था मुझे कुछ नहीं होगा,' अरविंद ने कहा 'मेरा काम जो बाकी था।' ठीक होने के बाद अब काम और महत्वपूर्ण हो गया, तेज़ी आ गई। 'हिंदी थिसारस का सही समय आ गया है,' अरविंद अपने मित्रों से कहते, 'इस के लिए मुझे चुना गया है। न मैं थिसारस को छोड़ूँगा न थिसारस मुझे। पूरा होने के लिए वह मुझे बचाता रहेगा।'

१९९१ तक अरविंद को अपूर्ण थिसारस का भावी प्रकाशक मिल गया था। नाम रखा था - समांतर कोश, समांतर अभिव्यक्तियों का संकलन। जब भी उस की छपाई और प्रकाशन की समस्याओं का ध्यान आता, अरविंद को बुख़ार-सा चढ़ने लगता। वह स्वयं छापेख़ाने में काम कर चुके थे। छपाई की समस्याएँ जानते समझते थे। पहले कार्ड टाइपिस्टों को दिए जाएँगे। टाइपिस्टों के हाथों उन का क्रम बिगड़ सकता था, कुछ कार्ड खो भी सकते थे। टाइपिंग में ग़लतियाँ छूट जाएँगी। पहले उन के प्रूफ़ पढ़ कर दोबारा टाइप कराना होगा। फिर वे छापेख़ाने जाएँगे, वहाँ जो ग़लतियाँ और घपले होते हैं, वे भी अरविंद जानते थे। छपते छपते हिंदी टाइपों में मात्राएँ टूटने से अर्थ का अनर्थ हो जाता था - यह अरविंद से अधिक कौन जान सकता था। और फिर शब्दों का इंडैक्स! संदर्भ खंड छपने के बाद वह कौन कितने समय में बना पाएगा? सारा प्रोजेक्ट चित होता नज़र आता था।

'हमें सारा डाटा कंप्यूटरित करना होगा,' सुमीत का कहना था। कहना आसान था, करना नहीं। कंप्यूटर के लिए पैसे थे कहाँ? उन दिनों एक लाख से ज़्यादा का बैठता था कंप्यूटर। किसी से इतना पैसा मिलने की संभावना नहीं थी। आख़िर सुमीत ने ईरान के एक अस्पताल में काम ले लिया। लौट कर कंप्यूटर ख़रीदा। कंप्यूटर के लिए प्रोग्रामिंग और भी महँगी शै होती है। अंततः सुमीत ने अपने आप किताबें पढ़-पढ़ कर प्रोग्रामिंग सीखी और अरविंद के प्रोजैक्ट में सहायता करने लगा।

कंप्यूटर आते ही नज़ारा बदल गया। एक पूर्णकालिक कर्मचारी ने सुमीत के बनाए डाटाबेस में नौ महीने लगा कर सारा डाटा ऐंटर कर दिया। अब अरविंद की बारी थी। वह कंप्यूटर के कल पेंच समझ चुके थे। टाइपिस्ट तो १९५३ से थे ही। अपने लेख टाइपराइटर पर ही लिखते थे। कंप्यूटर के नए

"अमर सिंह का मॉडल बुरी तरह आउट-आफ़-डेट पुराणकालीन था। उस के मुख्य भाग का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था थी। उसमें 'सिंह' का संदर्भ क्षत्रिय वर्ण से था, 'गाय' का वैश्य से! 'संगीत' तो नैसर्गिक गतिविधि था, लेकिन 'गायक' था नीच शूद्र!"

> जब इतने सालों बाद रीडर्स डाइजेस्ट के अपने पूर्व सहकर्मी अरविंदजी (तब ८२ साल) से मैं मिला, तो उन्होंने कहा कि उनका काम अभी ख़त्म नहीं हुआ है। अब भी वह सुबह पाँच बजे उठ कर अपने विशाल डाटा के परिष्कार और संवर्धन में लग जाते हैं।

की-बोर्ड पर हाथ जमाने में देर नहीं लगी। नई-नई संकल्पनाएँ नए-नए शब्द जोड़े जाने लगे। कहीं कोई दोहराव होता तो कंप्यूटर तुरंत बता देता, एक-एक शब्द को इंडैक्स में शामिल कर लेता और अंत में छपाई के लिए किताब बना कर दे देगा!

दिसंबर १९९६ में हिंदी ने पहला और विशाल थिसारस देखा 'समांतर कोश'। इसे बनाने में दो नहीं पूरे बीस साल लगे थे। राष्ट्रपति भवन में विशेष समारोह में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा को कोश का पहला सैट भेंट किया कुसुम ने, साथ खड़ा था १९५२ का वह नौजवान पत्रकार अरविंद। निस्संदेह, प्राचीन निघंटु और अमर कोश से यहाँ तक भारतीय कोशकारिता की यह लंबी यात्रा थी। समांतर कोश को तत्काल सफलता मिली। इसे हिंदी के माथे पर सुनहरी बिंदी कहा गया। एक समालोचक ने इसे शताब्दी की पुस्तक का ख़िताब दिया। एक ने लिखा- समांतर कोश में से गुज़रना शब्दों के मेले में से गुज़रना है।

अरविंद सफलता पर बैठ रहने वालों में कभी नहीं थे। ३,५०,००० से अधिक शब्दों के डाटा में इंग्लिश अभिव्यक्तियाँ सम्मिलित करने का प्रयाण शुरू हो गया। बेटी मीता न्यूटरीशनिस्ट बन चुकी थी। उस ने समांतर कोश की सभी संकल्पनाओं के लिए प्रस्तावित इंग्लिश शब्दहाशिए में लिख डाले। 'अँगरेजी शब्दावली डालने में इस से मुझे बड़ी सहायता मिली,' अरविंद कहते हैं।

अब दस और साल लगा कर कुमार दंपति का तीन खंडों वाला महाग्रंथ आया 'द पेंगुइन इंग्लिश/हिंदी/हिंदी/इंग्लिश थिसारस एण्ड डिक्शनरी (२००७)। अरविंद का एक अन्य उल्लेखनीय कोश है शब्देश्वरी - देवी-देवताओं के नामों का थिसारस। इस में शिव के २४११ नाम हैं।

और अब इंटरनैट के http://arvindlexicon.com पते पर उपलब्ध है अरविंद लैक्सिकन द्विभाषी हिंदी/इंग्लिश/थिसारस। इसमें हिंदी शब्द रोमन लिपि में भी पढ़े जा सकते हैं। जो लोग देवनागरी नहीं जानते उन के लिए यह एक विशेष सुविधा है। साथ ही तैयार हैं टैबलेट, स्मार्ट फ़ोन, सैल फ़ोन और ऐंड्राइड आदि के लिए अलग संस्करण। 'सब कुछ पारिवारिक प्रयास है,' अरविंद का कहना है। अब परिवार ने अपनी कंपनी भी खोल ली है 'अरविंद लिंग्विस्टिक्स प्रा.लि.। इस की सीईओ (अध्यक्ष) है मीता।

अरविंद को संतोष है कि अब तक समांतर कोश की बीस हज़ार से ज़्यादा प्रतियाँ बिक चुकी हैं। छठा रीप्रिंट अभी आया है। लेखक, पत्रकार, विज्ञापन कापीराइटर, अध्यापक, विद्यार्थी सब इस से लाभ उठा रहे हैं।

'जब भी ज़रूरत पड़ती है मैं अरविंद कुमार के थिसारस के पन्ने पलटता हूँ,' यह कहना है मुंबई के विज्ञापन लेखक और क्रिएटिव ट्रांसलेटर लक्ष्मीनारायण बैजल का (बैजल ने थम्सअप के लिए तूफ़ानी ठंडा जिंगल लिखी है।) 'सच तो यह है कि हमारे अनुवादक मेल-समूह का कोई भी सदस्य इस की उपयोगिता सहर्ष बताएगा।'

'अरविंद कुमार का योगदान अमूल्य है,' कहना है दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष और डीन आफ़ कालिजेज़ तथा लोकप्रिय स्तंभ लेखक डाक्टर सुधीश पचौरी का। 'मैं हिंदी भाषा में सक्षम हूँ, फिर भी जब कभी मेरे मन में कोई क्लिष्ट अकादेमिक शब्द आता है, तो आसान शब्द खोजने में थिसारस बड़े काम आता है।' आश्चर्य नहीं, कई हिंदी क्षेत्रों में अरविंद शब्द कोशकार का पर्याय बन गया है। अरविंद को अनेक साहित्यिक पुरस्कार और सम्मान भी मिले हैं।

फिर भी जब इतने सालों बाद रीडर्स डाइजेस्ट के अपने पूर्व सहकर्मी अरविंदजी (तब ८२ साल) से मैं मिला, तो उन्होंने कहा कि उनका काम अभी ख़त्म नहीं हुआ है। अब भी वह सुबह पाँच बजे उठ कर अपने विशाल डाटा के परिष्कार और संवर्धन में लग जाते हैं। बड़े-बड़े सपने अभी और भी हैं। इन में से एक है :

सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं को अपने विशाल डाटा में समाने का। आरंभ करना चाहते हैं तमिल से। और बाद में आकांक्षा है इंग्लिश-इतर विदेशी भाषाओं के शब्द संकलन की। इस के लिए सुमीत ने कंप्यूटर ऐप्लिकेशन तैयार कर ली है। बढ़ कर यह सुविशाल डाटा 'शब्दों का विश्व बैंक' बन जाएगा और इस की सहायता से बहुभाषी थिसारस पलक झपकते ही बनाए जा सकेंगे।

'ये सब महान संभावनाएँ हैं,' कहना है हमारे करामाती कोशकार का। 'जब तक भाषाएँ बढ़ती और सँवरती रहेंगी, मेरा काम चलता रहेगा।'■

रीडर्स डाइजेस्ट के जुलाई २०१२ के अंक में छपे लेख का हिंदी अनुवाद

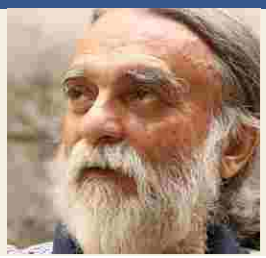

मुश्ताक अली खान 'बाबी'

१९४८ में खम्भात, गुजरात में जन्म. १९७१ में धातुशास्त्र में स्नातक बने. ४० साल 'प्लास्मा' टेक्नोलॉजी में काम किया. कविताएँ अंग्रेजी, उर्दू, हिंदी, गुजराती और फ्रेंच भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं. सम्प्रति - पत्नी एवं बेटी के साथ पूना में रहते हैं.

सम्पर्क : maxbabi@gmail.com

संस्मरण

अविस्मर्णीय सोफिया

मेरी पहली याद यह है जब हमारा छोटा-सा विमान ज्यूरिक (स्विटजरलैंड) से सोफिया में उतारा तब विमान तल बहुत ही छोटा लगा - किसी यूरोपियन देश की राजधानी के काबिल तो यकीनन नहीं लगा।

मेरे दोस्त डॉ. वर्होश्कोव का लड़का एडवर्ड मुझे लेने के लिए अपनी मोटर गाड़ी में आया था और अच्छी-खासी अंग्रेजी जानता होने के बावजूद ज़्यादातर चुपचाप गाड़ी चलाता रहा।

करीबन एक घंटे के बाद हम शहर के बीच वाले हिस्से में आ पहुंचे। मैंने ये भी सविशेष समझ लिया था कि राजधानी की बीच से ही इनका राजमार्ग गुज़रता है, जिस पर से गाड़ी चलाकर देश के दूसरे शहरों की तरफ जा सकते हैं। गाड़ियां सौ या डेढ़ सौ किलोमीटर की रफ्तार से भागती दिखाई देतीं थी और लोग रास्ता कैसे पार करते होंगे ये सवाल मुझको हरदम सताता रहा। जिसका जवाब उसी शाम को मिल गया, जहां चप्पे-चप्पे पर भूतल मार्ग बने हैं जहाँ एक साथ सैकड़ों लोग रास्ता पार कर सकते हैं। मैं खुद चलकर देख आया कि वे बहुत बेहतरीन किस्म के रास्ते हैं।

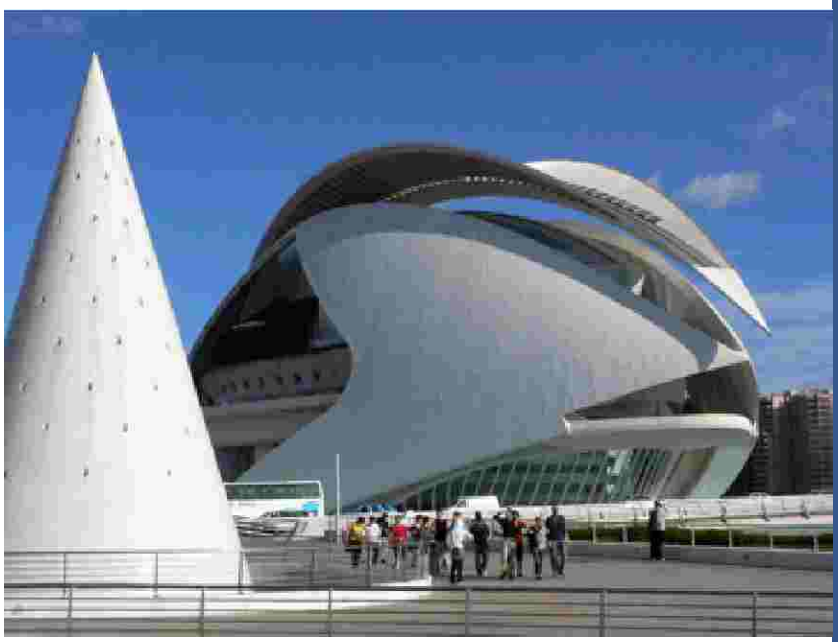

> *विओलेता मुझे शहर के बीच लगे बाजार में ले गईं, जहाँ एक बहुत ही बड़े मैदान में एक पवेलियन लगा था। हम दोनों शहर के बीच से गुज़रती ट्राम में सफ़र करते साथ ही बढ़िया कॉफ़ी और नाश्ता करने के लिये रुका करते थे।*

अलेक्सान्दर हुम्द्बोल्दत स्ट्रीट पर होटल गणेशा नाम पढ़ते ही मैं चौंक गया। कुछ जान-पहचान हो जाने पर और एडवर्ड के जाने के बाद पता चला की होटल का मालिक १९७० के दशक में भारत यात्रा पर आया था। उन दिनों लम्बे बाल वाले हाथ में गिटार लेकर लाखों हिप्पी आया करते थे जिन्हें भारत का आकर्षण बड़ी मात्रा में हुआ करता था। होटल मालिक श्रीसत्यसाईं बाबा का चेला था और श्रीगणेश का नाम शुभ होता है इस बात से वाकिफ भी था, इसलिये उसने अपने होटल का नाम गणेशा रख लिया। होटल अच्छी खासी साफ़ सुथरी और सुव्यस्थित थी, लेकिन वहां खाना नहीं मिलता था, न ही चाय-कॉफ़ी। मेरे लिए ये तो अच्छा ही हुआ क्योंकि बाहर जाकर खाने से मेरी जान-पहचान और भी बढ़ी। खासतौर से दो रूसी वैज्ञानिकों से जो उसी फैक्ट्री में जाया करते थे जिस के मालिक डॉ. अलेक्सान्दर वर्होश्कोव थे और एडवर्ड उनका बेटा था।

दो-तीन दिन काम करने के बाद रविवार आया तब डॉक्टर साहब ने विओलेता नाम की अच्छी अंग्रेजी बोलने वाली महिला के साथ मुझे शहर देखने भेज दिया। करीबन सारा दिन वह साथ रही और सबसे पहले वहां के काफी पुराने महाविद्यालय से रूबरू होने ले गयी। इस महाविद्यालाय की इमारत ४०० साल से ज़्यादा पुरानी है और यहां सारे के सारे पठन-कक्ष बहुत बड़े और सुव्यवस्थित दिखे।

बाद में विओलेता मुझे शहर के बीच लगे बाजार में ले गईं, जहाँ एक बहुत ही बड़े मैदान में एक पवेलियन लगा था, जिसके इर्द-गिर्द सुहासिनी घास लगी थी और अगणित पेड़-पौधे भी लगे थे। हम दोनों शहर के बीच से गुज़रती ट्राम में सफ़र करते साथ ही बढ़िया कॉफ़ी और नाश्ता करने के लिये रुका करते थे। अनौपचारिकता के इस माहौल में मैंने इन भद्र महिला से उनकी खुद की पारिवारिक अवस्था के बारे में जिज्ञासा प्रकट की। देखने में वे ३०-३२ साल की दिखतीं थीं मगर सही उम्र सुनकर मैं चकरा गया - वे ५४ साल की थीं और चंद ही दिनों में दादी बनने वाली थीं। इनका सौष्ठव अप्रतिम था और बहुत ही हँसमुख स्वभाव की वजह से सारा दिन उनके साथ में बिताने से यह अवसर मेरे लिये अविस्मरणीय बन गया था। उन्होंने मुझे बहुतेरे अत्यंत पुराने स्मारक भी दिखाये, जिनकी जीर्ण दशा को अत्यंत आधुनिक प्रकार की क्रियाओं से सुव्यवस्थित रखा गया था।

सोफिया शहर में कुछ अजब बातें मुझे तुरंत ही नज़र आयीं - एक तो पूरे शहर में बच्चे बड़ी मुश्किल से दिखाई देते हैं और दूसरी अजीब बात है हजारों गाड़िया रास्तों पर लावारिस पड़ी दिखतीं हैं। मेरे साथ एक सहकारी रशियन इंजीनियर ने ने बताया कि बहुतेरे बुल्गारिआई लोग आज़ादी मिलते ही पश्चिमी देशों की तरफ पलायन कर गए थे। शायद चले जाने वाले सारे लोग जवान रहे होंगे और उनके बच्चे उनके साथ गए ही होंगे इसलिए बाग़-बगीचों में बच्चे खेलते हुए नज़र नहीं आते।

देखने में वे ३०-३२ साल की दिखतीं थीं मगर सही उम्र सुनकर मैं चकरा गया - वे ५४ साल की थीं और चंद ही दिनों में दादी बनने वाली थीं। उनका सौष्ठव अप्रतिम था और हँसमुख स्वभाव की वजह से सारा दिन उनके साथ में बिताने से यह अवसर मेरे लिये अविस्मरणीय बन गया था।

खाने-पीने में बल्गेरियाई खाना योरोपीय प्रकार का कम मसालेवाला फिर भी स्वादिष्ट होता है और उनकी शराब बहुत तेज़ होती है। इनकी कॉफ़ी बहुत कड़वी और चाय बहुत ही फीकी होती है। चाय में ये लोग कई किस्म की खुशबू डालते हैं, अलग-अलग प्रकार के फूलोंवाली सुगंधें - चाय का नशा मिलता ही नहीं। टीवी कार्यक्रम १०-१२ भाषाओं में आते हैं और भारत के बारे में सिर्फ सीएनएन या बीबीसी चेनल्स देखने को मिलते हैं।

इस यात्रा का एक हफ्ते का समय पलक झपकते ही गुजर गया। मेरा सहायिकाओं से काफी लगाव हो चुका था इसलिये सबको अंतिम प्रणाम करना कठिन और कष्टदायी हो चुका था। कुल मिलाकर जीवनभर अविस्मरणीय रहेंगी ये सब यादें। ■

गंगानन्द झा

बैद्यनाथ-देवघर (झारखण्ड) में जन्म. सीवान (बिहार) के डी.ए.वी स्नातकोत्तर कॉलेज में वनस्पति-शास्त्र की अध्यापन से सेवा-निवृत्त. चार्ल्स डार्विन के क्रम-विकासवाद, जवाहरलाल नेहरू के scientific temper तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवन-दर्शन के समन्वय के आलोक में जीवन-पथ के प्रति अपने कौतूहल बरकरार है. वर्तमान में चण्डीगढ़ में अपने चिकित्सक पुत्र के साथ निवास.

सम्पर्क : ganganand.jha@gmail.com

शब्द-चित्र

भारतीय रेल और हम

एक बार का वाकया है। लोकसभा में रेल विभाग के बजट पर चर्चा हो रही थी। बाबू जगजीवन राम तब रेल मंत्री हुआ करते थे। एक सदस्य ने टिप्पणी की थी - 'अब तो रेल-यात्रा पर रवाना होने के पहले जग और जीवन को राम के हवाले कर देना होता है।' यह एक चुटकुला ही नहीं, सच्चाई भी है।

तब से भारतीय रेल के नक्शे में काफी बदलाव आया है। बिना चरित्र बदले थर्ड क्लास का नाम बदल कर सेकण्ड क्लास हो गया। फर्स्ट क्लास नहीं रहा। वातानुकूलित श्रेणियों का आविर्भाव हुआ। बर्थ के आरक्षण की व्यवस्था हुई। पर भारतीय रेल में जग और जीवन का राम के साथ रिश्ते में कोई बदलाव नहीं आया है।

इस सच्चाई से मैं पहली बार रूबरू जब हुआ जब स्नातक कक्षा का छात्र था। पटना से देवघर आना था। रात साढ़े बारह बजे पटना से मिलने वाली बनारस एक्सप्रेस में अपेक्षाकृत कम भीड़ रहा करती थी और यह अक्सर काफी लेट रहा करती थी। पर उस दिन आश्चर्यजनक रूप से सही समय पर आई और काफी भरी हुई भी थी। जैसे तैसे मैं गाड़ी पर सवार हुआ।

> *बिना चरित्र बदले थर्ड क्लास का नाम बदल कर सेकण्ड क्लास हो गया। फर्स्ट क्लास नहीं रहा। वातानुकूलित श्रेणियों का आविर्भाव हुआ। बर्थ के आरक्षण की व्यवस्था हुई। पर भारतीय रेल में जग और जीवन का राम के साथ रिश्ते में कोई बदलाव नहीं आया है।*

बड़ी मुश्किल से एक डिब्बे में चढ़ पाया। फिर ट्रेन ने सीटी दी और गाड़ी चल पड़ी। गाड़ी काफी तेजी से चलती जा रही थी। गाड़ी चली जा रही थी। काफी देर बाद एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी, तो मैं तपाक से उतर पड़ा। प्लैटफॉर्म पर एक टिकट निरीक्षक को देखा तो उससे अपने गन्तव्य स्टेशन पर पहुँचने का समय पूछा। निरीक्षक ने उत्तर देने के बदले मुझसे मेरा टिकट माँगा। मैंने टिकट दिया तो उसे देखकर उसने मुझसे कहा कि चौंसठ रुपए दीजिए। इस ट्रेन में कम से कम तीन सौ मील का टिकट लगता है। मैंने कहा ऐसा तो पंजाब मेल का है, जिसका समय एक घण्टा पहले ही था। निरीक्षक ने कहा, यह पंजाब मेल ही है जो आज एक घण्टा देर से चल रही है। बनारस एक्सप्रेस तो हस्बेमामूल खरामा-खरामा चली आ रही है पीछे से। उसके बाद मेरा टिकट उन्होंने अपने पास रख लिया और आगे बढ़ते गए। और मेरे गिड़गिड़ाने का कोई असर उन पर नहीं पड़ा, तो मैंने कहा कि मेरा सामान तो गाड़ी में ही है। उन्होंने कहा कि सामान ले आइए। मैं सामान निकालने मुड़ने लगा, तभी ट्रेन ने सिटी दी तो टिकट निरीक्षक ने मुझे मेरा टिकट वापस कर दिया। तब तक गाड़ी चल चुकी थी। मैं अकबका कर चलती गाड़ी में जो डिब्बा सामने मिला उसका हैंडल पकड़कर सवार हो गया।

पच्चीस दिसम्बर की रात के दो बजे होंगे। पंजाब मेल की तेज गति। मेरे पाँव थरथर काँप रहे थे। लग रहा था कि हाथ छूट

> मैंने दस रुपए उनकी ओर बढ़ा दिए। मुझे उनके लिए बहुत खराब लग रहा था कि एक पढ़े-लिखे सम्मानित परिवार के व्यक्ति को भारतीय रेल ने अपराधी जैसा आचरण करने को प्रवृत्त कर दिया है। अपने लिए भी बुरा लगा कि मैं आदर्श नागरिक जैसा आचरण नहीं कर पाया।

जाएगा, पाँव जवाब दे जाएँगे। अगला स्टेशन आने में कम से कम चालीस मिनट की देर थी। यह उच्च क्लास का डिब्बा था। शीशे से अन्दर दिख रहा था। लोग सोए हुए थे। मेरी आवाज अन्दर नहीं जा पा रही थी। २५ दिसम्बर की सर्द रात के दो बजे, पंजाब मेल की तेज स्पीड। तभी भीतर सोई एक महिला की नींद खुली, उसकी निगाह मेरे ऊपर पड़ी। उसने अपने पास सोए पुरुष को जगाया। वह पुरुष मेरी ओर देख-देख कर कुछ-कुछ बोलता रहा, मैं यथासम्भव गिड़गिड़ाने के हावभाव कर उसे दरवाजा खोलने को प्रेरित करता रहा। पर उन पर कोई असर नहीं पड़ रहा था। इस बीच एक और पुरुष की नींद खुली उसने मेरी ओर देखा, उठा और आकर दरवाजा खोला। फिर मुझसे लटके होने का कारण पूछा। मैंने अपनी स्थिति बयान की तो उसने कहा कि किनारे में खड़े रहो और अगले स्टेशन पर उतर जाना। मुझे लगा जैसे जीवनदान मिला हो। वे फिर से सो गए। पर तब पहले सज्जन का प्रवचन चालू हो गया, 'चलती गाड़ी में लटक जाते हो, गिर जाते तो तुम्हारे माँ-बाप पर क्या बीतती, कुछ सोचा है?' मैं चुपचाप सुनता रहा, यद्यपि उनकी बातें मुझे चुभ रही थीं। शायद उनका विवेक उन्हें कोंच रहा था।

फिर जब अगला स्टेशन आया तो मैंने अपना सामान समेटा और यार्ड में जाकर छिपकर पीछे से आने वाली अपनी गाड़ी का इन्तजार करता रहा। जब गाड़ी आई तभी निकला। इस तरह मैंने चोर की तरह अपनी जान बचाई।

शायद इस तजुर्बे ने मुझे आतंकित कर दिया हो। जब भी रेल-यात्रा के लिए रवाना होता हूँ, मन परेशान रहता है। बिना आरक्षण के ट्रेन पर सवार होने की सोचना भी कठिन परीक्षा से गुजरना होता है मेरे लिए। प्लैटफॉर्म पर का हर व्यक्ति, लगता है, मेरी ही जगह दखल करनेवाला है। अपनी प्रतिक्रिया कभी कभी मुझे ही हैरान करती है। एक बार की बात नहीं भूल पाता। प्लैटफॉर्म पर भीड़ देखकर मैं भरोसा नहीं कर पा रहा था कि गाड़ी में मैं चढ़ पाऊँगा। फिर उस भीड़ में मौजूद बूढ़ों और गोद में बच्चे लिए औरतों को देखा तो बल मिला था कि जब ये चढ़ने का भरोसा रखते हैं तो मैं भी चढ़ सकूँगा।

अस्सी के दशक की बात है। मुझे पत्नी के साथ सीवान से दिल्ली आना था। वैशाली एक्सप्रेस में हमें अग्रिम आरक्षण मिल गया था। मैं आश्वस्त था। किसी परेशानी की आशंका नहीं थी। दो छात्र हमें छोड़ने स्टेशन आए थे यद्यपि मैंने उन्हें मना किया था कि आरक्षण है तो दिक्कत कैसे होगी। पर जब गाड़ी आई तो होश उड़ गए। ट्रेन में चढ़ पाना ही सम्भव नहीं हो रहा था। गाड़ी खुलने को हुई। तभी एक छात्र ने एक डिब्बे के दरवाजे से मुझे अन्दर ढकेलते हुए कहा, 'चाचीजी को बगल के डिब्बे में चढ़ा दिया है, आपका सारा समान भी अन्दर डाल दिया है। ये डिब्बे वेस्टिब्यूल हैं अन्दर से। आप समेट लेंगे।' मैं सँभलता, तब तक गाड़ी चल चुकी थी। आरक्षणजनित सुरक्षा का आश्वासन पूरी तरह ध्वस्त हो गया था।

अन्दर से बगल के डिब्बे में प्रवेश किया, तो पत्नी भी बदहवास थीं। उनकी नई साड़ी कई जगह से फट गई थी। हम दोनों भीड़ के बीच से राह बनाते अपने बर्थ के पास पहुँचे तो लोगों ने राह दे दी और सामान बटोरने में भी सहायता की। पर बर्थ पर कब्जा किए लोगों ने कहा कि रिजर्वेशन रात के नौ बजे के बाद ही लागू होता है। उन लोगों ने बर्थ का एक छोटा-सा कोना हमारे बैठने के लिए छोड़ने की उदारता दिखलाई थी। हमने ट्रेन के कंडक्टर से सम्पर्क किया तो उसने टका सा जवाब दिया, 'आपके लिए हम लाठी चलाएँ?'

लाचार अवस्था में हम रात के नौ बजने का इंतजार करने लगे। कुछ करने की औकात तो हमारी रह नहीं गई थी। राम ने ही हमें राहत दी जब नौ बजने के बाद दखलकारियों का गन्तव्य आ जाने के कारण हमारे बर्थ खाली हो गए। रेल के अधिकारी बेफिक्र बने रहे थे। हम बेचारे भले आदमी जो थे।

नब्बे के दशक में स्लीपर श्रेणी की शुरुआत की गई। इस श्रेणी में दो सौ चालीस किलोमीटर से अधिक दूरी की यात्रा करनेवालों को ही काउण्टर पर टिकट मिलता था। इससे कम दूर तक सफर करनेवालों को ट्रेन पर टिकट निरीक्षक से सम्पर्क कर अपना टिकट अपग्रेड करवा लेना होता था। अगर आपने सम्पर्क करने में पहल नहीं की तो टिकट निरीक्षक पचास रुपए जुर्माने के साथ ही अपग्रेड करेगा। मुझे एक बार स्लीपर क्लास में यात्रा करने का अवसर मिला। ट्रेन पर सवार होते ही मैं टिकट निरीक्षक की तलाश करने लगा। अगले स्टेशन पर एक युवा टिकट निरीक्षक से सम्पर्क हुआ। उन्होंने मेरा गन्तव्य पूछा और अपग्रेड करने के बजाय मुझसे कहा कि मैं भी साथ में चल रहा हूँ, आप बैठें। मैं तो बैठ गया, पर वे मेरे आसपास मँड़राते रहे। वे इस नौकरी में नए लग रहे थे, जब मेरा गन्तव्य स्टेशन आया तो वे डिब्बे के गेट पर खड़े थे। मैंने दस रुपए उनकी ओर बढ़ा दिए। मुझे उनके लिए बहुत खराब लग रहा था कि एक पढ़े-लिखे सम्मानित परिवार के व्यक्ति को भारतीय रेल ने अपराधी जैसा आचरण करने को प्रवृत्त कर दिया है। अपने लिए भी बुरा लगा कि मैं आदर्श नागरिक जैसा आचरण नहीं कर पाया।■

मीरा गोयल

बनारस के राय खानदान में जन्म. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से १९६४ में हिन्दी साहित्य में एम.ए. माँ गुरुदेव के समय शान्तिनिकेतन में रही और पढ़ीं, जिसकी गहरी छाप आपकी रुचियों में दिखाई देती है. ललित कला में रुचि के परिणामस्वरूप २००६ में 'ललित कला अकादमी' दिल्ली में वाटर कलर पेंटिंग की एकल प्रदर्शनी लगाई. प्रदर्शनी के अनुभव पर आधारित आलेख 'स्वप्न से साक्षात्कार' साहित्य कुंज में प्रकाशित. कविताएँ 'प्रवासिनी के बोल' में शामिल.

सम्पर्क : mgoyal@nc.rr.com

विचार

पश्चाताप से परे

विवाह जीवन का अंग है, सम्पूर्ण जीवन नहीं। विवाह-विच्छेद जीवन का अंत नहीं अपितु अपने कटु अनुभव से जो सीखा उसको चरितार्थ करने का दूसरा अवसर है। हमें मानव जीवन, मात्र सुख प्राप्ति के लिये नहीं मिला है, बल्कि जीवन को अनुभव करते हुए जीने और आत्मज्ञान के लिए मिला है। सुसुप्त हो कर जीना कायरता है। जीवन में अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रह कर अपनी खुशी और पूर्णता का मार्ग सबको स्वयं ढूढ़ना चाहिए।

अपने बच्चे के प्रति माता-पिता का स्नेह किसी भी प्रकार के प्रतिबन्ध से मुक्त होता है (unconditional love)। परन्तु पति-पत्नी के संयोग की पुष्टि और सफलता के लिये दोनों की संतुष्टी का समाधान आवश्यक है। यह लेन-देन का रिश्ता होता है। यदि दम्पति विवाह की इस आवश्यक, अलिखित शर्त नकार देते हैं तो शीघ्र ही दोनों का जीवन क्लांत और नीरस बन जाता है। अन्ततोगत्वा असंतुष्ट मन चीत्कार कर उठता है और समस्त सीमाओं को तोड़ बंधन-मुक्त हो जाना चाहता है।

प्रायः प्रारंभ में नवविवाहित पति जो अपनी मासूम पत्नी को हृदय से प्यार करता है, उसकी खुशी के लिये उसके अंदर की छिपी, सोई प्रतिभा को हौले-हौले जगाता है और अपने स्नेह, सहयोग और धैर्य से उसे उसकी दैवी प्रतिभा को व्यर्थ न जाने देने के लिये प्रोत्साहित भी करता है।

> *नवविवाहित पति जो अपनी मासूम पत्नी को हृदय से प्यार करता है, उसकी खुशी के लिये उसके अंदर की छिपी, सोई प्रतिभा को हौले-हौले जगाता है और अपने स्नेह, सहयोग और धैर्य से उसे उसकी दैवी प्रतिभा को व्यर्थ न जाने देने के लिये प्रोत्साहित भी करता है।*

पिंजड़े में बंद चिड़िया दाना खा कर यों ही खुश रहना सीख सकती है, पर जब पिंजड़ा खोल कर उसे विस्तृत संसार से परिचय कराया जाता है तो पुनः वह निरीह पिंजड़े में खुश नहीं रह सकती। स्वतंत्र जीवन के अनेक विकल्प (options) को देख कर अब उसे मणि जटित स्वर्ण पिंजड़ा और अनार का दाना भी खुश रहने के लिये पर्याप्त नहीं लगता। एक बार जग जाने के बाद दुबारा आँखें मूँद कर सोया तो नहीं जा सकता। पत्नी को अब जीवन से बहुत कुछ चाहिये। वह जीवन के सीमित दायरे में नहीं रह सकती। अब पति को इस सत्य का सामना करना ही पड़ेगा। निःस्वार्थ व्यवहार से वह मनुष्य से देवता बन सकता है पर इसमें अपनी हानि देख पुनः मनुष्य नहीं बन सकता। इसके लिये न समाज अनुमति देता है और न ही अंतरात्मा। यदि पिंजड़ा खुला और चिड़िया उड़ चुकी तो मन से या बेमन से, इस सत्य की स्वीकृति में ही समझदारी

> पति-पत्नी के संबन्ध की गूढ़ता और सच्चाई उन दोनों के सिवाय पूर्ण रूप से कोई नहीं जान सकता। अत: उनके विवाह-विच्छेद को लेकर तर्क-वितर्क, आलोचना, मीमान्सा करना व्यर्थ है और फिर समय के साथ गलत-सही की परिभाषा भी बदल जाती है।

होगी और शांति की संभावना भी। पति यह आत्म संतोष कर सकता है कि उसने असंतुष्ट पत्नी को उसकी इच्छानुसार विवाह बंधन से मुक्त किया। इस निःस्वार्थ कर्म के लिये उसे ईश्वर समय आने पर पुरस्कृत करेगा। अपनी प्राचीन भारतीय परंपरा में भी इस विचार को मान्यता दी गई है कि दूसरे की भावना का मान करो, उसके व्यक्तिगत सुख और शांति का रास्ता न रोको, यह सबका जन्मसिद्ध अधिकार है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि विवाह विच्छेद का कदम भविष्य को असहनीय और अन्धकार मय दीखने के बाद ही लिया जाता होगा। क्योंकि विवाह की असफलता में व्यक्तिगत हार, लज्जा, ग्लानि, समाज में निंदा, दुःख, दुःशंका आदि-आदि अनेक अवान्छित भावनाओं से उलझना होता है। अतः विवाह विच्छेद का निर्णय इन सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए लिया जाता होगा। एक विवाह की असफलता सम्पूर्ण व्यक्ति की असफलता नहीं कही जा सकती।

पति-पत्नी के संबन्ध की गूढ़ता और सच्चाई उन दोनों के सिवाय पूर्ण रूप से कोई नहीं जान सकता। अतः उनके विवाह-विच्छेद को लेकर तर्क-वितर्क, आलोचना, मीमान्सा करना व्यर्थ है और फिर समय के साथ गलत-सही की परिभाषा भी बदल जाती है। समाज के व्यवधान की सरलता के आगे व्यक्तिगत सुख और भावना की कोई महत्ता नहीं थी, पर आज का प्रगतिशील समाज व्यक्तिगत सुख शांति और पूर्णता का मार्ग स्वयं खोजने के लिये हमें प्रोत्साहित करता है। विवाह विच्छेद के कारण भिन्न हो सकते हैं, पर यह निर्णय किसी भी दम्पति के लिये सरल नहीं होता। उनके निर्णय का मूल्यांकन किये बगैर यदि हम उन्हें स्नेह दें, बाधक न बने बल्कि अवसर प्रदान कर सकें तो उनका मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

विवाह विच्छेद के बाद स्वतंत्र पंछी विशाल विश्व और अपने जीवन की अनिश्चितता से घबराता तो है पर साथ ही क्षितिज के छोर की खोज में धड़कते दिल और फड़फड़ाते पंख लिये निकल पड़ता है। बंधन मुक्त स्वतंत्रता की कीमत तो उसे चुकानी ही होगी। आगम का अज्ञान और भय उसे कठिन प्रयत्न के लिये प्रेरित करता है। धैर्य, लगन और अथक परीश्रम से निहित प्रतिभा मंज कर चमक उठती है।

मेहनती का भाग्य भी साथ देता है। अर्जुन को जैसे निशाना लगाते हुए कठफोड़वा की केवल आँख दिखाई पड़ी थी, वैसे ही एकाग्र चित्त से जब एक ही लक्ष्य की साध हो तो सफलता निश्चित होती है। अपनी कला साधना से साधिका मंच की पटरानी बन सकती है। फिर क्या है! मंच की चकाचौंध और प्रशंसकों का तांता युवा हृदय को मतवाला

बना देने वाला वो नशा है जो खाए वो पछताए, जो न खाए वो पछताए। अब तो सफलता जहाँ ले जाये! प्रशस्ति का मार्ग होता है कठिन। कुछ लोग भटक भी जाते हैं।

अवांछित स्थिति में निष्क्रिय पड़े रहना और भाग्य को कोसने में कोई बहादुरी नहीं है। बहादुरी है गिर कर उठने में। अंतरात्मा की पुकार सुन अनुकूल कदम उठाना और अपने प्रति सजग उत्तरदायित्व निभाना ही हमारा धर्म है। ईश्वर ऐसे सजग कर्मयोगी को शक्ति दे, धैर्य दे, आत्मबल दे और सफलता का वरदान दे। कुछ साहसी लोग बंधन के सीमित पारितोष (fulfilment) के आगे स्वतंत्रता के अनजान और अनन्त भविष्य का स्वागत करते हैं। दो प्रेमी स्वतंत्र होते हुए भी अपनी इच्छा से साथ रहना चाहें वही सफल और सार्थक संयोग है।■

आत्माराम शर्मा

२६ फरवरी १९६८ को ग्राम खरगापुर, टीकमगढ़, मध्यप्रदेश में जन्म. हिन्दी साहित्य में एम.ए. और एम.सी.ए. की उपाधि. नईदुनिया समाचार-पत्र में कला-समीक्षक के तौर पर लेखन. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ और कविताओं का प्रकाशन. 'गर्भनाल पत्रिका' के संस्थापक सदस्य एवं पूर्व-सम्पादक. सम्प्रति : जनसम्पर्क विभाग, मध्यप्रदेश के सृजनात्मक उपक्रम 'मध्यप्रदेश माध्यम' में उप प्रबन्धक.

सम्पर्क : डीएक्सई-२३, मिनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड, भोपाल-४६२०२३ (म.प्र.). ईमेल : atmaram.sharma@gmail.com

बातचीत

हिन्दी-प्रेमी डॉ. हाईंत्स वर्नर वेसलर से आत्माराम शर्मा की बातचीत

हिन्दी को कामकाज की भाषा बनाना होगा

आत्माराम : हिन्दी प्रेमी पाठकों को अपने बारे में बताना चाहेंगे।

डॉ. हाईंत्स : मेरी राष्ट्रीयता जर्मन है और इक्कीस साल की उम्र से मैंने जर्मनी में 'इंडोलॉजी' जिसे हिन्दी में 'भारत-विद्या' कहा जा सकता है - की पढ़ाई शुरू की। उस वक्त मेरी माताजी मेरे इस निर्णय से खुश नहीं थी क्योंकि वे चाहती थीं कि मैं या तो डॉक्टर बनूं या इंजीनियर - जैसा कि अक्सर ही माताएँ अपने बच्चों को बनाना चाहती हैं। लेकिन मैंने बहुत जिद के साथ भारतीय भाषाएँ सीखने की शुरुआत की। जर्मनी में इण्डोलॉजी की जो परम्परा है उसमें संस्कृत मुख्य विषय है, जबकि आधुनिक भाषाओं में ज़्यादातर हिन्दी गौण विषय होता है। मैंने संस्कृत और हिन्दी और पाली की पढ़ाई एक साथ शुरू की। बाद के वर्षों में एम.ए. एवं पी.एच.डी. तक मेरी मुख्य पढ़ाई संस्कृत की ही हुई है।

आपके परिवार में भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत भाषा के सन्दर्भ में कोई माहौल था ?

परिवार में ऐसा कोई माहौल नहीं था। १५ वर्ष की उम्र में मैंने हेरमान हैस्से का उपन्यास 'सिद्धार्थ' पढ़ा था, जो काफी प्रचलित है। दुनिया की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। उसको पढ़कर ही मुझे पता चला कि जर्मन विश्वविद्यालय में ही दीगर भारतीय भाषाएँ पढ़ी जा सकती हैं। हमारे परिवार में भारत को लेकर कोई खास रुचि नहीं थी। मेरे पिताजी सेवा में काम करते थे और माताजी घरेलू महिला थीं। जब मेरे पिताजी का देहांत हो गया तो इसका असर मेरे ऊपर दूसरी तरह से पड़ा। मुझे अनेकों तरह की परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, इससे मेरे मन में जीवन के बारे में, दर्शन के बारे में अनेक तरह के सवाल उठने लगे और इससे मेरी जागरूकता पुष्ट हुई, एक तरह की समझ विकसित हुई। मेरे परिवार में हिन्दी और भारत के बारे में जिज्ञासा की कोई पृष्ठभूमि नहीं है।

आपका हिन्दी प्रेम कैसे शुरू हुआ ?

जब मैंने पढ़ाई शुरू की तो उस वक्त सोचा कि संस्कृत के साथ हिन्दी भी सीखनी चाहिये। संस्कृत बहुत मुश्किल भाषा है और इसे सीखने में मैंने बहुत मेहनत की। लेकिन साथ ही हिन्दी सीखते हुए बहुत मज़ा आया। हिन्दी में लोगों से बात करना ज्यादा अच्छा लगता था और यही कारण है कि हिन्दी सीखने में रुचि लगातार बढ़ती चली गई।

मैंने बॉन में पढ़ाई की। उस वक्त कोलोन शहर में 'वॉयस ऑफ जर्मनी' का मुख्यालय था। यह जर्मनी का हिन्दी में प्रसारित होने वाला अन्तर्राष्ट्रीय रेडियो स्टेशन है। हिन्दुस्तान

डॉ. हाईंत्स वर्नर वेसलर

१९६२ में जर्मनी के डसलडर्फ़ शहर में जन्म। बॉन विश्वविद्यालय से एम.ए. तथा डीलिट, स्विटजरलैंड के ज्यूरिख विश्वविद्यालय से संस्कृत में पीएचडी की उपाधि प्राप्ति की। कुछ समय तक पत्रकारिता में भी सक्रिय रहे एवं अंतर्राष्ट्रीय रेडक्रॉस सोसायटी के लिये भी काम किया। हबीब तनवीर के नाटक 'आगरा बाजार' एवं उदयप्रकाश का उपन्यास 'पीली छतरी वाली लड़की' का जर्मन में अनुवाद प्रकाशित। सम्प्रति : उपसला विश्वविद्यालय, स्वीडन में हिन्दी पढ़ाते हैं।

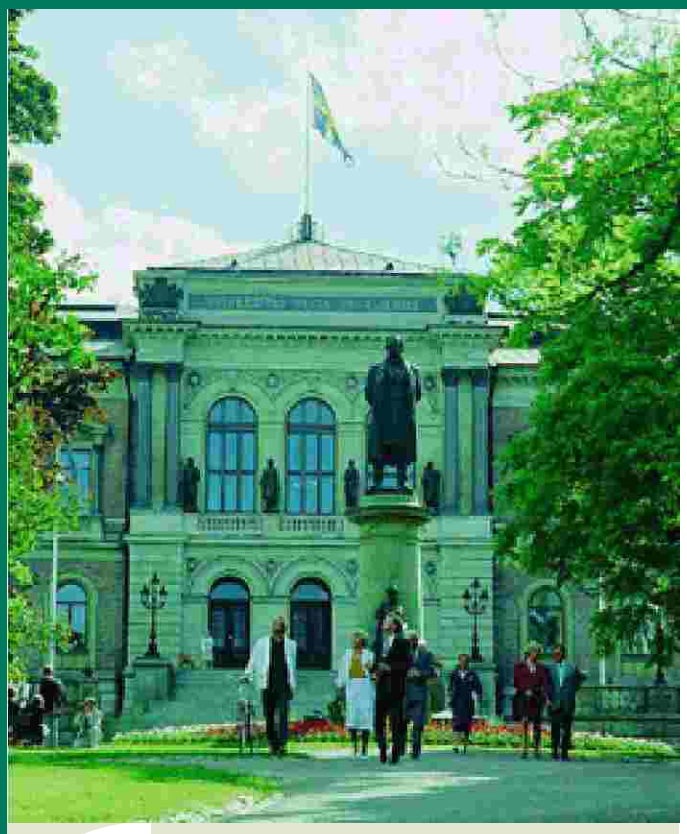

> हिन्दी सीखने के दौरान पढ़ाने से मुझे बहुत फायदा मिला है। भाषा पढ़ने से तो आती ही है, लेकिन पढ़ाने से उस पर और ज्यादा अधिकार प्राप्त होता है। जब मुझे अपने छात्रों को हिन्दी पढ़ानी थी तो उस वक्त मैंने इस भाषा पर बहुत मेहनत की।

से जब मैं हिन्दी का एडवान्स डिप्लोमा करने के बाद यहाँ पहुंचा तो कुछ हद तक हिन्दी में बातचीत करने में सक्षम हो गया था। इसके अलावा जर्मनी में जब लोग पढ़ते हैं तो ज्यादातर लिखित हिन्दी पढ़ते हैं, तो रेडियो से लोगों से जब मेरा जीवन्त बातचीत के जरिये सम्पर्क बना तो धीरे-धीरे मैं हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करने की दिशा में बढ़ने लगा।

आप जिस अधिकारपूर्ण तरीके से हिन्दी में बात कर रहे हैं, उसे सुनकर सुखद आश्चर्य होता है, इस उपलब्धि के पीछे कौन-सी प्रेरक शक्ति काम कर रही है ?

इसके पीछे क्या है, यह कहना मेरे लिये काफी मुश्किल है, लेकिन बस मैं यही कह सकता हूं कि इस दुनिया की कोई भी जुबान सीखी जा सकती है, चीनी हो, जापानी हो, रूसी, एस्किमो या अफ्रीकी जुबान हो उसे सीखा जा सकता है। मैं इस बात का जीवित प्रमाण हूं कि चाहने पर हिन्दी भाषा पर भी अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

मेरे ख्याल से इसमें मेरी कोई खासियत जैसी बात नहीं है। मैं यह भी नहीं कहूंगा कि हिन्दी सीखने के पीछे मेरे पिछले जन्म के कोई संस्कार काम कर रहे हैं, बल्कि मैं यह कहना चाहता हूं कि इंसान को मेहनत करना चाहिये और अगर वह कई सालों तक मेहनत करता है तो वह किसी भी भाषा पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। इसके अलावा मुझे एक बात यह भी कहनी है कि हिन्दी सीखने के दौरान पढ़ाने से मुझे बहुत फायदा मिला है। जब मुझे अपने छात्रों को हिन्दी पढ़ानी थी तो उस वक्त मैंने इस भाषा पर बहुत मेहनत की।

आप इन दिनों स्वीडिन में अध्यापन कर रहे हैं।

बॉन यूनिवर्सिटी से मैंने डीलिट किया। और वहीं नौकरी कर ली, लेकिन जर्मनी की वह नौकरी स्थाई नहीं थी, तो फिर स्वीडन में एक विजिटिंग प्रोफेसर बनने का प्रस्ताव मुझे मिला। और मैंने फैसला किया कि मैं वहां जाऊं। वैसे स्वीडन की जुबान हमारी जुबान से अलग है तो भी मैं स्वीडन की जुबान स्वीडिश सीख रहा हूं। स्वीडन में १९वीं शताब्दी से ऐसी परम्परा चली आ रही है कि ज्यादातर पढ़ाई संस्कृत में ही होती थी, अब जो छात्र हमारे यहां आते हैं और जो फैकल्टी की ओर से जो मांग होती है वो ज्यादातर आधुनिक भाषाओं की ओर जाती है। मेरे अलावा इस वक्त वहां दूसरा कोई नहीं है। अभी मुझे बहुत पढ़ाना है। इससे मैं बहुत खुश हो जाता हूं पर मुझे उम्मीद है कि आने वाले दिनों में इस काम के लिये कुछ अन्य लोग भी मेरे साथ जुटेंगे ताकि अकेले पढ़ाने का मेरा सिलसिला खत्म हो जाये।

योरोप व अमेरिकी युवाओं में भारतीय संस्कृति को लेकर क्या वैसा ही आकर्षण है जैसा कि भारतीय उपमहाद्वीप के युवाओं में उनकी भाषा और रहन-सहन के लेकर बना हुआ है।

१९६० के दशक के बाद जो धारा चली आ रही है - वो जो हिप्पी आंदोलन के साथ उभरी थी यानि कि भारत के दर्शन में रुचि लेना आदि। वो आंदोलन अब पहले से कमजोर पड़ा है, खासकर हिन्दुस्तान, नेपाल और श्रीलंका के संदर्भ में। श्रीलंका में पिछले दिनों वहां हुई दहशतगर्दी की वजह से, मैं सचमुच उसे दहशतगर्दी नहीं कहूंगा, वहां तमिल और सिंहली के बीच में जो लड़ाई शुरू हुई उस वजह से, पर मैं यह नहीं कह सकता हूं कि हमारे छात्रों में ज्यादातर दर्शन में रुचि है, ऐसे छात्र हैं जो ज्यादातर फिल्मों में दिलचस्पी लेते हैं। हालांकि आर्थिक जगत में ज्यादातर अंग्रेजी ही चलती है पर

हिन्दी के साथ जो अन्तरसांस्कृतिक सम्पर्क होता है उसकी क्षमता भाषा के साथ आ जाती है। इस बात को पश्चिमी दुनिया में लोग समझते हैं। मुझे लगता है कि चीनी अध्ययनों-अध्यापनों को देखकर सांस्कृतिक जागरूकता और भाषा के स्तर पर जागरूकता बहुत ज्यादा है, जबकि चीन में आम बोलचाल के स्तर पर अंग्रेजी नहीं चलती। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि चीनी भाषा चीन में ज्यादा जीवित है, जबकि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी की स्थिति भारत में वैसी नहीं है। भारत में आर्थिक जगत एवं रोजगार के क्षेत्र में ज्यादातर अंग्रेजी ही चलती है। इस मोर्चे पर हिन्दी कमजोर पड़ जाती है।

दुनिया की अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी को आप कैसे देखते हैं?

अपनी मातृभाषा के अलावा जब आप कोई दूसरी भाषा सीखते हैं तो आप स्वयं को अलग तरीके से अभिव्यक्त करते हैं। हरेक भाषा की अपनी ताकत और खूबसूरती होती है जो उसे विशिष्ट बनाती है। जैसे हिन्दी में तू, तुम और आप तीन तरीकों से लोगों को सम्बोधित करते हैं, अंग्रेजी में सिर्फ एक है- यू। तो भाषा के स्तर पर जाकर ये पता चलता है कि हिन्दुस्तान में आपस में सम्बोधित करने का कैसे अलग-अलग तरीका होता है। भाषा के तौर पर हिन्दी की समृद्धि का यह सिर्फ एक नमूना है और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं।

अपने विश्वविद्यालय के भाषा विभाग और हिन्दी आदि की स्थिति के बारे में बतायें?

हमारे विश्वविद्यालय में भाषा वाग्मय एवं भाषा विज्ञान का विभाग है। इसमें अलग-अलग ५-६ भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। लेटिन और ग्रीक भी उसके अंदर आती हैं। यहां दुनिया की तमाम भाषाओं के मुकाबले चीनी भाषा का हिस्सा सबसे बड़ा है। फारसी, अरबी, टर्किश और हिन्दी आदि इसके बाद आती हैं। इण्डोलॉजी में संस्कृत और हिन्दी आदि जुड़ी हुई हैं। तुलनात्मक भाषा विज्ञान भी है जिसमें खासकर वैदिक संस्कृत भी आती है। इसके अलावा अलग-अलग कोर्स हैं अलग-अलग भाषाओं में। हमारा संस्थान बहुत बड़ा है। चीनी जुबान सीखने के लिये औसतन हर साल ६०-७० छात्र आते हैं, जबकि हिन्दी सीखने के लिये मुश्किल से १०-१२ छात्र होते हैं। अब इससे ही आप अंदाजा लगा लीजिये हिन्दी की स्थिति के बारे में।

हिन्दी से जर्मन एवं जर्मन से हिन्दी में अनुवाद की क्या स्थिति है?

जर्मन मेरी मातृभाषा है और उसमें ही मैं सपने देखता हूं। हालांकि मैं स्वीडिश में अनुवाद कर सकता हूं, उसी प्रकार अंग्रेजी भी मेरी मातृभाषा नहीं है तो उसमें जब मैं अनुवाद करता हूं तो वह साहित्यिक नहीं बन सकता। मैंने दो साथियों

> हमारा संस्थान बहुत बड़ा है। चीनी जुबान सीखने के लिये औसतन हर साल ६०-७० छात्र आते हैं, जबकि हिन्दी सीखने के लिये मुश्किल से १०-१२ छात्र होते हैं। अब इससे ही आप अंदाजा लगा लीजिये हिन्दी की स्थिति के बारे में।

के साथ हबीब तनवीर के नाटक 'आगरा बाजार' और उदयप्रकाश का उपन्यास 'पीली छतरी वाली लड़की' का हिन्दी से जर्मन में अनुवाद किया है। इन दिनों अजय नावरिया की कहानी 'गोदना' का जर्मन में अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। अजय नावरिया जामिया मिलिया में प्रोफेसर हैं और दलित लेखकों में इनको मैं खास मानता हूं। इनका उपन्यास 'उधर के लोग' और कई कहानियां मुझे बहुत पसंद हैं। उनका कथानक नई दिशा की ओर इंगित करता है, उसमें सपने हैं, जादू है और खासकर तथाकथित जादू यथार्थवाद उनके लेखन में स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है।

हिन्दी अखबारों की भाषा इन दिनों हिंग्लिश होती जा रही है। अगर यही दौर जारी रहा तो आने वाले २०-३० सालों में हिन्दी का स्वरूप कैसा होगा?

मुझे हिन्दी की एक अलग ही तस्वीर दिखाई दे रही है। पिछले कुछ सालों में अहिन्दीभाषी प्रदेशों में हिन्दी का जिस तरह से आम बोलचाल में इस्तेमाल बढ़ा है उसे हिन्दी की सफलता की कहानी के तौर पर देखना चाहिये। मज़ेदार बात यह है कि इसमें सरकारी तंत्र का कोई योगदान नहीं है, बल्कि मीडिया की दुनिया ने हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में अहम भूमिका अदा की है। फिल्मों के गाने, एफ.एम. रेडियो आदि की लोकप्रियता जिस तेजी से युवाओं में

बढ़ी है वह इसका जीवन्त सबूत है।

इसके अलावा हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि आधुनिक दौर की शुद्ध हिन्दी का स्वरूप आजादी के संघर्ष के दौरान और उसके बाद के दौर में विकसित हुआ है। अनेकों बार यह खड़ी हिन्दी एक तरीके से कृत्रिम भाषा महसूस होती थी, क्योंकि उसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दों का बहुतायत में इस्तेमाल किया गया, जबकि आज के दौर में संस्कृत का स्थान अँग्रेजी ने ले लिया है, यानी अब बोलचाल की हिन्दी में अँग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बहुतायत में हो रहा है। तो इसे मैं हिन्दी के लिये अच्छा ही मानता हूँ, क्योंकि कोई भी भाषा अपने विकास क्रम में दूसरी भाषा के शब्दों को अपने में समाहित करती जाती है। उदाहरण के लिये उत्तर भारत में बोली जाने वाली हिन्दी में अरबी, फारसी, पुर्तगाली आदि भाषाओं के ऐसे अनेकों शब्द हैं जो अब हिन्दी के ही हो गए हैं।

तो हिन्दी एक तरह से 'इन्टर कल्चर लेंग्वेज' जिसे अन्तरसंबंधी भाषा कहना ज्यादा उपयुक्त होगा, के तौर पर आगे बढ़ रही है। हालाँकि यह भी कहना सही है कि हरेक भाषा का अपना एक मानक स्वरूप होता है, लेकिन हिन्दी का संस्कृतनिष्ठ स्वरूप ही असली हिन्दी है, मैं ऐसा नहीं मानता। इस संबंध में मैं जर्मन भाषा का उदाहरण देना चाहूँगा। डेढ़ सौ साल पहले उसका जो स्वरूप था वह आज वैसा नहीं है। उसमें फ्रेंच के बहुतेरे शब्द शामिल हो गए हैं। इसी तरह अँग्रेजी में भी सैकड़ों फ्रेंच शब्द आ गए हैं। तो इस प्रकार मैं ये नहीं कहूंगा कि हिन्दी का स्वरूप बहुत सारा बिगड़ रहा है।

हिन्दी के अखबार विज्ञापनों के लिये ऐसा कर रहे हैं या कुछ और दवाब है।

मैं जब हिन्दी के अखबार पढ़ता हूं तो मुझे नहीं लगता कि सिर्फ अँग्रेजी के लफ़्ज ही इस्तेमाल किये जा रहे हैं। बहुतेरे ऐसे संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी हो रहा है जो शायद पचास साल पहले इस्तेमाल करना मामूली बात नहीं थी। मसलन- अधिकार, उग्रवाद, प्रदर्शन आदि शब्द अब धड़ल्ले से प्रयोग हो रहे हैं। तो एक तरह से संस्कृत शब्दों के हिन्दी में इस्तेमाल को मैं स्वाभाविक प्रक्रिया के तौर पर देखता हूँ।

पुराने लोगों को स्मरण होगा कि आजादी से पहले सुनीति कुमार चटर्जी, जो हिन्दुस्तान के बड़े भाषा वैज्ञानिक माने जाते थे ने कहा था कि भारत की सभी भाषाओं की लिपि रोमन में होना चाहिये, जिस तरह से इंडोनेशियन, तुर्की आदि जुबान रोमन में लिखी जाती है, लेकिन भारत में उस समय इस बात को कोई मानने को तैयार नहीं था, लेकिन आज देखिये कि इंटरनेट पर ईमेल और मोबाइल पर एसएमएस लिखते समय हिन्दी को रोमन लिपि में लिखने का धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है। तो समाज में भाषा का विकास अलग-अलग तरीके और विभिन्न स्तरों पर जारी रहता है, इसलिये हिन्दी के विकास के सन्दर्भ में मुझे निराशा का कोई कारण दिखाई नहीं देता है।

> *पिछले चार-पाँच सालों में इंटरनेट पर हिन्दी के उपयोगी में तेजी आई है। हिन्दी में ब्लॉग लेखन, फेसबुक आदि पर भी इसके इस्तेमाल का चलन युवाओं में तेजी से देखने को मिल रहा है। इससे लोगों के बीच गहरा सम्पर्क बन रहा है।*

यूनिकोड ने हिन्दी के प्रयोग को सरल और प्रचलित कर दिया है?

पिछले चार-पाँच सालों में इंटरनेट पर हिन्दी के उपयोगी में तेजी आई है। हिन्दी में ब्लॉग लेखन, फेसबुक आदि पर भी इसके इस्तेमाल का चलन युवाओं में तेजी से देखने को मिल रहा है। इससे लोगों के बीच गहरा सम्पर्क बन रहा है। किसी भी भाषा को जीवन्त बनाये रखने के लिये यह जरूरी भी है और यूनिकोड ने हिन्दी के प्रयोग के माहौल को बढ़ावा दिया है। साहित्यिक हिन्दी के अलावा भी हिन्दी के और भी अलग-अलग रूप हैं, उनमें से मीडिया द्वारा उपयोगी की जा रही हिन्दी का स्वरूप एक है। जहाँ तक मेरा अनुभव है विदेशों में मीडिया की हिन्दी लोगों में ज्यादा प्रचलन और प्रयोग में लाई जाती है और इसी को आगे बढ़ाया जाना चाहिये।

हिन्दी के 'प्रवासी लेखक' या 'प्रवासी साहित्यकार' सम्बोधन के बारे में आप क्या कहेंगे?

यह अपनी पहचान की खोज करने के दौरान पैदा हुआ शब्द है। लोग हिन्दी के अलावा पंजाबी, उर्दू, तमिल आदि में लिखते हैं, पर असली बात देखने लायक यह है कि उनके लिखे को पढ़ता कौन है। मेरा मानना है कि तथाकथित हिन्दी के प्रवासी लेखकों की रचनाओं को पढ़ने वालों की संख्या बहुत ही सीमित है। हिन्दी की नामी पत्रिकाओं में इन लेखकों की रचनाएँ कभीकभार ही प्रकाशित हो पाती हैं। यहाँ रचना की गुणवत्ता का प्रश्न नहीं है - मुझे लगता है कि यहाँ सम्पर्क न हो पाने या उसका अभाव होना हानिकारक है। इसके अलावा मेरे मन में कभी-कभी यह भी सवाल आता है कि हिन्दुस्तान में चालीस से पैंतालीस करोड़ लोग मातृभाषा के तौर पर हिन्दी बोलते हैं, पढ़ते हैं, लेकिन बड़े से बड़े और नामी प्रकाशन गृह में जब हिन्दी के किसी बड़े लेखक का जब कोई उपन्यास या कहानी संग्रह प्रकाशित होता है और उसका प्रिंट ऑर्डर अगर पाँच हजार प्रतियों का हो तो इसे बहुत बड़ी बात मानी जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दी

समाज में लोगों की साहित्य में दिलचस्पी बहुत कम है। उनके जीवन की प्राथमिकता में दीगर बातें पहले हैं और साहित्य के लिये समय ही नहीं है। लेकिन इसका यह आशय नहीं कि अच्छे साहित्य की कोई कीमत नहीं है - हाँ यह जरूर है कि अच्छे साहित्य को समकालीन दौर में स्वीकृति या प्रशंसा प्राप्त न हो, लेकिन पचास-सौ सालों के बाद भी अगर उसे स्वीकारा जाये तो साहित्य सृजन को सार्थक कहा जायेगा। मुक्तिबोध और अज्ञेय आज भी पढ़े जा रहे हैं।

हिन्दी साहित्यकारों की दोहरी मानसिकता जगजाहिर है। आपका अनुभव क्या है?

मैं ऐसे अनेक लोगों को जानता हूं जो हिन्दी के हक के लिये राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर बड़े जोर-शोर से काम करते हैं, लेकिन अपने घर में बच्चों से अंग्रेजी में बात करते हैं। उनका परिवार हर तरीके से अँगरेजी मानसिकता में जीता है। यूएनओ में हिन्दी को मान्यता दी जाये या नहीं इससे ज्यादा महत्वपूर्ण मैं ये मानता हूं कि हिन्दी में अच्छे साहित्य का सृजन हो, पत्रकारिता प्रतिबद्ध हो जाये, अच्छी और प्रेरक फिल्में बनें जो लोगों को पसंद आयें। तो इस तरह से हिन्दी आगे बढ़ती जायेगी और फिर उसे उसका स्वाभाविक हक खुद-ब-खुद हासिल हो जायेगा।

हिन्दी के बड़े साहित्यकार अज्ञेय ने लिखा है : 'मैं अपनी जुबान से लड़ाई करता हूं, मैं शब्दों की खोज में मेहनत करता हूं, मैं कभी-कभी गाली भी देता हूं अपनी जुबान को, पर मैं हमेशा अपनी जुबान के सम्पर्क में हूं, मुझे लगता है कि ये मैं ही हूं जो अपनी अस्मिता की खोज करता हूं, जब मैं हिन्दी में बात करता हूं।' तो अज्ञेय की ये बात बहुत गहरी है और हिन्दी के संदर्भ में विचारणीय भी है। हिन्दी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिल जाये वह तो ठीक है पर असली बात अपनी भाषा को लेकर हमारे मन में कितना सम्मान और कैसा बरताव कायम है इससे ज्यादा फर्क पड़ता है।

फादर कामिल बुल्के जैसे विदेशी मूल के अन्य हिन्दी प्रेमियों का उल्लेख करना चाहेंगे?

फादर कामिल बुल्के तो बहुत मशहूर हैं। उनके तैयार किये शब्दकोश का मैं इस्तेमाल करता हूं। रामकथा पर उनके पीएचडी शोधग्रंथ को भी मैं पढ़ता हूँ, लेकिन उन जैसी बड़ी शख्सियत का विदेशी मूल का हिन्दी प्रेमी विद्वान मुझे आज तक नहीं मिला है। हालांकि मेरी खोज अब भी जारी है। यों पूरी दुनिया में बहुतेरे विदेशी मूल के हिन्दी प्रेमी विद्वान है। अभी हाल ही में स्पेन में एक सम्मेलन में बहुतेरे विदेशी हिन्दी प्रेमी विद्वान जुटे थे, पर हम लोग फादर की तुलना में बहुत छोटे हैं और उन्हें मैं हिन्दी प्रेमी ही कहूंगा। सम्मेलन में शिरकत करने पचास-साठ लोग आये थे जिसमें आधे विदेशी और आधे हिन्दुस्तानी थे। यह पूरी संगोष्ठी योरोप में हिन्दी भाषा और उसके अनुवाद विषय पर केन्द्रित थी।

"हिन्दी में अच्छे साहित्य का सृजन हो, पत्रकारिता प्रतिबद्ध हो जाये, अच्छी और प्रेरक फिल्में बनें जो लोगों को पसंद आयें। तो इस तरह से हिन्दी आगे बढ़ती जायेगी और फिर उसे उसका स्वाभाविक हक खुद-ब-खुद हासिल हो जायेगा।"

विदेशी मूल के हिन्दी के विद्वानों को भारत सरकार पुरस्कृत करती है, आप क्या कहेंगे?

हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने, उसे बढ़ावा देने के लिये विदेशी मूल के हिन्दी प्रेमियों के भारत सरकार द्वारा जो सम्मान दिया जाता है, वह तो अच्छी बात है पर मेरे ख्याल से उससे भी बड़ी बात यह होगी कि दुनियाभर के इन विदेशी हिन्दी प्रेमियों के लिये दिल्ली में एक संस्थान बनाया जाये। जिसका स्वरूप 'भारतीय भाषायें अनुवादक संस्थान' जैसा कुछ हो सकता है। जहां साल में चार-पाँच बार हिन्दी में अनुवाद, सेमिनार आयोजित किये जा सकें। याने हिन्दी से विदेशी भाषा और विदेशी भाषा के श्रेष्ठ साहित्य का हिन्दी में अनुवाद करवाया जाये तो यह बड़ी उपलब्धि होगी। इस संस्थान में लायब्रेरी हो, विदेशियों के लिये सस्ते में कमरे हों तो उससे बहुत फायदा होगा। अभी जो विदेशी हिन्दी प्रेमी आपस में मिल रहे हैं वह महज इत्तफाक होता है। इस तरह के संस्थान के जरिये दुनियाभर के विदेशी एक जगह इकट्ठा होंगे तो उससे बहुत फायदा होगा और दुनियाभर में हिन्दी के पक्ष में माहौल बनेगा और प्रचार होगा।

वर्धा का अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय इस दिशा में काम कर रहा है।

वर्धा का हिन्दी विश्वविद्यालय कुछ हद तक मेहनत करता है, लेकिन विदेशियों की नजर से वर्धा बहुत दूर है, जबकि दिल्ली हर लिहाज से ज्यादा सुविधाजनक है। एक बात मैं यहाँ खास तौर पर उल्लेख करना चाहूंगा कि विदेशी मूल के जितने भी हिन्दी प्रेमी हैं वे हिन्दुस्तान के पूरी दुनिया में सांस्कृतिक राजदूत हैं। भारत सरकार के सम्मान का मतलब हमारे लिये ये नहीं है कि हमें पद्मश्री मिले या कुछ और मिले। हम तो बस यही उम्मीद करते हैं कि दिल्ली में अगर कोई ऐसा संस्थान बन सके जहां हम आपस में मिल-जुलकर बात कर सकें, लेखकों और अनुवादकों के सेमिनार हो सकें तो इससे हिन्दी का सही मायनों में बड़ा फायदा होगा।■

गर्भनाल

एक क्लिक पर पूरे अंक एक साथ

www.garbhanal.com

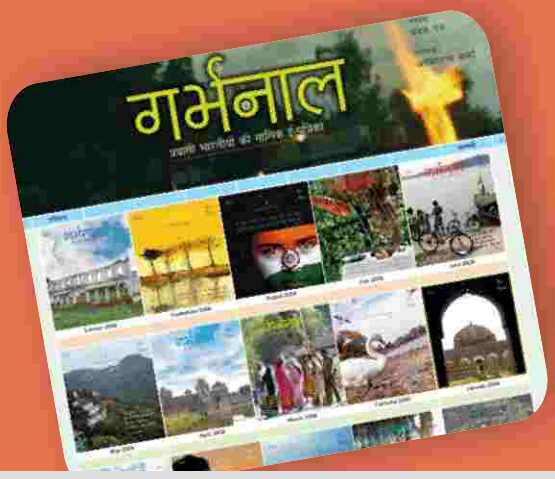

गर्भनाल के पुराने अंक पाएँ

एक साथ एक ही जगह

लॉगऑन करें

www.garbhanal.com

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

garbhanal@ymail.com

राजकिशोर

राजनीति में रुचि थी, लेकिन पत्रकारिता और साहित्य में आ गये. अब फिर राजनीति में लौटना चाहते हैं, लेकिन परंपरागत राजनीति में नहीं. सोचते हैं कि क्या मार्क्स की राजनीति गांधी की शैली में नहीं की जा सकती. एक व्यापक आंदोलन छेड़ने का पक्का इरादा रखते हैं. उसके लिए साथियों की तलाश है. आजकल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ फ़ेलो हैं. साथ-साथ लेखन और पत्रकारिता भी जारी है. रविवार, परिवर्तन और नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ सहायक सम्पादक के तौर पर काम किया. कई चर्चित पुस्तकों के लेखक. ताजा कृति : उपन्यास 'तुम्हारा सुख'.

सम्पर्क : ५३, एक्सप्रेस अपार्टमेंटस, मयूर कुंज, दिल्ली-११००९६ ईमेल : truthonly@gmail.com

नज़रिया

गैस सिलेंडर का अर्थशास्त्र

हाल ही में पेट्रोल और प्राकृतिक गैस पर संसद की स्थायी समिति ने सिफारिश की है कि जिन लोगों की आय ६ लाख रुपये सालाना से ज्यादा है, उन्हें रसोई गैस के सिलेंडर पर कोई सब्सिडी न दी जाए। इस खबर से अपेक्षाकृत संपन्न उपभोक्ताओं में खलबली मची हुई है। तुर्रा यह है कि सरकारी आँकड़ों के अनुसार, अपेक्षाकृत संपन्न परिवारों को लगभग ५० प्रतिशत महँगा बेचने पर भी तेल कंपनियों को घाटा होने जा रहा है, क्योंकि एक सिलेंडर की खुदरा लागत ९९६ रुपये बताई जाती है। ये आँकड़े जिस बड़ी सचाई पर प्रकाश डालते हैं, वह यह है कि हमारे देश के ९० प्रतिशत से ज्यादा लोगों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वे रसोई गैस के एक सिलेंडर की असली कीमत चुका सकें।

यह बात गले नहीं उतरती कि रसोई गैस जैसी निहायत जरूरी चीज को उसकी लागत रकम पर क्यों नहीं खरीदा जाना चाहिए। किसी भी हिसाब से देखें, सबसे दरिद्र व्यक्ति उसे ही माना जाएगा जो अपने खाने का खर्च खुद न उठा पाता हो। यानी जिसकी कमाई इतनी भी न हो कि वह अपने खाने की पूरी कीमत अदा कर सके। खाने की कीमत में खाद्य सामग्री और उसे आग में पकाने की कीमत शामिल है। इस हिसाब से, हमारा तथाकथित मध्य वर्ग वास्तव में कितना मध्य वर्गीय ठहरता है? उसकी तथाकथित संपन्नता की जड़ें बिलकुल खोखली नहीं हैं क्या? अगर सरकार हर एक उपभोक्ता से रसोई गैस की पूरी लागत वसूल करने लगे, तो देश भर में हाहाकार मच जाएगा। इनसे ज्यादा अच्छी हालत में तो वे हैं जो खाना बनाने के लिए गैस का इस्तेमाल नहीं करते। वे जो भी जलाते हैं - लकड़ी, उपले या कोयला, उसकी पूरी कीमत चुकाते हैं। इस पर उन्हें सरकार को एक पैसे की सब्सिडी भी नहीं देनी पड़ती। कई मायनों में हमारे गरीब हमारे अमीरों से बेहतर हैं - वे कम से कम देश की अर्थव्यवस्था पर बोझ तो नहीं हैं। ठीक से हिसाब किया जाए, तो शायद यह रहस्य सामने आ जाए कि हमारे अमीर लोगों की अमीरी का वास्तविक स्रोत हमारे गरीब ही हैं - उन्हें गरीब रखे बिना इनकी अमीरी एक दिन के लिए भी टिक नहीं सकती।

> *अगर सरकार हर एक उपभोक्ता से रसोई गैस की पूरी लागत वसूल करने लगे, तो देश भर में हाहाकार मच जाएगा। इनसे ज्यादा अच्छी हालत में तो वे हैं जो खाना बनाने के लिए गैस का इस्तेमाल नहीं करते।*

पहले पढ़ते थे, भारत एक अमीर देश है जिसमें गरीब

> गैस सिलेंडर का अर्थशास्त्र यह भी बताता है कि रसोई गैस से खाना बनाने की समस्याएँ कितनी गहरी हैं। वर्तमान परिस्थितियों में युद्ध स्तर पर प्रयास करने से भी इसे संभव नहीं किया जा सकता कि देश के हर परिवार में खाना गैस पर ही पके।

लोग रहते हैं। पहली बार जब यह बात पढ़ी, तो तत्काल कुछ समझ में नहीं आया। उलटबाँसियाँ मुझे अच्छी लगती हैं, पर उनमें वास्तविक अर्थ के पास पहुँचने का कुछ संकेत भी होता है। इस वाक्य का अर्थ तब खुला जब आगे यह पढ़ा कि प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से भारत एक संपन्न देश है, लेकिन उनका उपयोग न होने से देश की जनता गरीबी का जीवन जी रही है। यह बात आज भी उतनी ही ईमारदारी - और हाँ, दुख - के साथ कही जा सकती है।

लेकिन आज यह बात भी उतनी ही ईमानदारी - और हाँ, उतने ही दुख के साथ - कही जा सकती है कि भारत एक गरीब देश है जिसमें अमीर लोग रहते हैं। प्रति व्यक्ति आय, प्रति व्यक्ति उपभोग, शिक्षा, आवास, चिकित्सा, मनोरंजन आदि की दृष्टि से भारत का स्थान दुनिया के पहले सौ देशों में भी नहीं हो। ऐसे देश की गिनती जो गरीब देशों में नहीं करता, मानना चाहिए कि वह अव्वल दर्जे का मक्कार है अथवा जरूरत या औचित्य से ज्यादा शिष्टाचार बरत रहा है। लेकिन यह भी सही है कि इस गरीब देश में बहुत-से अमीर लोग रह रहे हैं। उनकी गिनती इस तरह निकाली जाती है कि इस वर्ष कुल कितने भारतीय करोड़पति या अरबपति हो गए हैं। चूँकि हर साल इस तरह के नए आँकड़े हमारे सामने पेश किए जाते हैं, इसलिए यह भ्रम पैदा हो चुका है कि हमारे देश में अमीरी बढ़ रही है। जाहिर है, यह भ्रम पैदा करने के पीछे वर्ग स्वार्थ हैं। गरीब देश के लोगों के लिए इससे बड़ी तसल्ली की बात और क्या हो सकती है कि उनका देश अमीर हो रहा है? यह बात सचाई के शायद ज्यादा करीब है कि हमारे देश में अमीरी नहीं बढ़ रही है, अमीर बढ़ रहे हैं।

पूरे देश को तो छोड़िए, इस समय आप देश के किसी भी राज्य को अमीर नहीं कह सकते। यहाँ तक कि दिल्ली को भी नहीं, जो राज्य क्या है, एक शहर है जिसे राज्य का फर्जी दर्जा दे दिया गया है। पक्के आँकड़े नहीं आए हैं, पर उम्मीद की जाती है, आगामी एकाध साल में दिल्ली की प्रति व्यक्ति सालाना आय पौने दो लाख रुपए के आसपास होनी चाहिए। इस प्रत्याशा के अनुसार, एक आदमी की दैनिक औसत आय हुई ४८० रुपये। हमारे यहाँ आँकड़ों को पेश करने का तरीका कितना बेहूदा है, इसका यह एक अच्छा उदाहरण है। जिसने भी दिल्ली देखी है, वह यह सुन कर हँसने लगेगा कि दिल्ली का हर आदमी चाहे तो रोज अपने ऊपर ४८० रुपये खर्च कर सकता है। मेरे अनुमान से, दिल्ली में रहनेवाले तीन-

चौथाई लोग भी इतना खर्च कर सकने की स्थिति में नहीं हैं। इसके आधार पर कोई यह हिसाब लगा सकता है कि जब देश भर की प्रति व्यक्ति सालाना आमदनी ६०,००० रुपये बताई जाती है यानी १६५ रुपये रोज, तो असलियत का चेहरा क्या होगा।

लेकिन गैस सिलेंडर का अर्थशास्त्र यह भी बताता है कि रसोई गैस से खाना बनाने की समस्याएँ कितनी गहरी हैं। वर्तमान परिस्थितियों में युद्ध स्तर पर प्रयास करने से भी इसे संभव नहीं किया जा सकता कि देश के हर परिवार में खाना गैस पर ही पके। हो सकता है, इतनी प्राकृतिक गैस हमारी पहुँच के भीतर हो, पर इतने सिलेंडर नहीं हो सकते। न हमारे पास इतना पैसा है कि सिलेंडरों को गाड़ी पर लाद कर घर-घर पहुँचाया जा सके। इसकी जो लागत आएगी, उसे हमारे लोग सहन नहीं कर सकते। तो क्या आधुनिक जीवन शैली उन्हीं समाजों के लिए उपयुक्त है जिनके पास पैसा है और जिनके सदस्यों की संख्या कम है?■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

व्याख्या

रामाख्यं

तुलसीदास राम कहे जाने वाले ईश्वर को प्रणाम करते हैं। ईश्वर एक अमूर्त सिद्धांत की तरह तुलसी का अभिप्रेत नहीं है। सारा दर्शन, महात्मा गाँधी कहते थे कि, धूल की तरह रूक्ष शुष्क (ड्राइ एज़ डस्ट) है यदि वह तत्काल किसी जीवन्त सेवा में अनूदित नहीं कर दिया जाता। तुलसी समझते थे कि वे जिस धर्म का प्रतिपादन करना चाह रहे हैं, उसकी सबसे अच्छी अनुशंसा किसी दर्शन की किताब से नहीं होगी बल्कि एक ऐसे चरित्र, एक ऐसे जीवन के प्रमाण से होगी जो हमें प्रेरित कर सके। शंकराचार्य कह गए थे : 'स्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते।' अपने स्वरूप के अनुसंधान को ही 'भक्ति' कहते हैं। तुलसी 'मायामनुष्यं' के मनुष्य रूप को दिखाना चाह रहे थे। अपने जैसा ही ईश-स्वरूप दिखाने की यह कोशिश इसलिए थी क्योंकि सत्य उनके लिए किसी शब्द का उच्चारण नहीं था। वे उसे जिया जाता हुआ दिखाना चाहते थे। हमारे दैनिक जीवन में समाहित होता हुआ। हमारी दिनचर्या में व्यवहृत होता हुआ। ईश्वर के रहस्य की उलटबाँसियाँ आख्या नहीं बन सकती थीं। इसलिए तुलसी ने एक चरित ढूँढ़ा और उसी में ईश्वरीय गुणों की आभा दिखाई। वे विश्वास नहीं करवाना चाहते थे, वे दिखाना चाहते थे। इस मायने में वे कुछ-कुछ गौतम बुद्ध के क़रीब थे जो आओ और मानो (कम एंड बिलीव) की जगह आओ और देखो (कम एंड सी) की बात करते थे। जैसे बुद्धदर्शन में कहा जाता है : यदि मेरी बंद मुट्ठी में मोती है तो मेरा यह बताना कि मेरे पास मोती है, सामने वाले के लिए विश्वास का प्रश्न पैदा करता है। लेकिन यदि अपनी मुट्ठी मैं खोल दूँ तो सामने वाला स्वयं देख लेता है कि मुट्ठी में मोती है, तब वह विश्वास का प्रश्न ही नहीं रह जाता। तुलसी ने यही किया। उनका सगुण ईश्वर, उनका राम ब्रह्म के मोती वाली मुट्ठी का खुलना है। जैसे बुद्ध ने कहा : एहि पस्सिका (आओ और देखो), वैसे ही तुलसी ने राम की झाँकी दिखाई। रगों में दौड़ने फिरने के हम नहीं काइल/जो आँख में ही न उतरा वो लहू क्या है। तुलसी ने ब्रह्म को हमारी आँख में उतार दिया। उन्होंने राम के इतने विज़ुअल्स दिए कि वे आज हिन्दुस्तानी चेतना में रच-बस गए हैं। वे हर प्रसंग और संदर्भ में हमें अनुप्राणित करते हैं। बुद्ध की तरह तुलसी भी बहुत बड़े मेटाफिज़िकल सवालों

> *घने कमल के पत्तों की आड़ में कमल का जल्दी पता नहीं चलता जैसे माया से ढँके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दिखता।*

में स्पेकुलेशन करने से बचते रहे। जैसे मालुंक्यपुत्त द्वारा दस गूढ़ आध्यात्मिक प्रश्नों के रखे जाने पर बुद्ध ने उसे कहा कि इन समस्याओं के बारे में कोई व्यक्ति कैसा भी अभिमत रखे; जन्म, दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट हैं ही। मैं इस जीवन में उनसे ही निर्वाण घोषित करता हूँ। तुलसी भी जन्म, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्टवाले जीवन के बीच निर्वाण शान्तिप्रदं वाले राम की कहानी कहते हैं। वे आचरण का आदर्श उपस्थित करते हैं। वे एक आइकॉन और एक इमेज देते हैं। अमूर्त की गीली मिट्टी से अपनी प्रतिभा के बल पर वे एक जीवन्त प्रतिमा तैयार करते हैं। राम ब्रह्म का ब्रांड या लेबल भर नहीं, तुलसी कोई ब्रांड एंबेसेडर भर नहीं। उनके राम सभी उपाधियों को अतिक्रान्त करते हैं। तुलसी ने राम के रूप में ब्रह्म को जब आकार दिया तो वह समाज को आकार देने की उनकी अभीप्सा की परिणति थी। एक लेखक का आत्मविश्वास : किताब कॉपी क़लम और दवात निकलेगी/ मेरी तो बस यही कुल कायनात निकलेगी। लेकिन इन्हीं के सहारे तुलसी ने भारतीय समाज की कर्कशताओं को खत्म कर एक समन्वित रूप देने की कोशिश की। उनके राम वहाँ हैं जहाँ द्वैत खत्म हो जाते हैं : मैं अरु मोर तोर मैं माया। मैं और मेरा, तू और तेरा यही माया है : तुलसी के राम लक्ष्मण को बतलाते हैं। थोड़ी देर बाद राम की कथा सुना रहे शंकर कहते हैं : पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म/मायाछन्न न देखिअ जैसे निर्गुन ब्रह्म।। यानी घने कमल के पत्तों की आड़ में कमल का जल्दी पता नहीं चलता जैसे माया से ढँके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दिखता।

देखना और दिखाना यह तुलसी के लिए ज़रूरी था। मध्यकाल में माया का तामिस्र तो और भी सघन हो चला था। इसलिए निर्गुण ब्रह्म की जगह राम की आख्या ज़रूरी थी। उन्होंने दर्शन (फलसफे) को देखने के लिए पर्याप्त नहीं माना

जन्म, दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट हैं ही। मैं इस जीवन में उनसे ही निर्वाण घोषित करता हूँ। तुलसी भी जन्म, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्टवाले जीवन के बीच निर्वाण शान्तिप्रदं वाले राम की कहानी कहते हैं।

बल्कि दृष्टांत उनके हिसाब से ज़रूरी हो गया था। अवतार का अर्थ है कि तर्क नहीं, साक्ष्य आया है। अवतार का अर्थ है कि सिद्धांत नहीं, साहचर्य और सहभागिता आई है। तुलसी इस ज़रूरत को महसूस कर रहे थे। सौभाग्य से उन्हें राम मिल गए। मैं इस अँधेरे के दिल में उतरने वाला था/ये तू कहाँ से लिए रोशनी निकल आया/सभी निकलते हैं इस मोह जाल से मरकर/मेरा नसीब कि मैं जीते जी निकल आया। राम की रोशनी ने उनकी रोशनाई को जगमगाया। उस प्रकाश-पथ पर उन्होंने भारतीय अन्तःकरण को ले चलने की सोची। एक छवि की रचना, बल्कि पुनर्रचना क्योंकि रामाख्यान तो वाल्मीकि के समय से था और उसमें शैतानियाँ भी हो रही थीं। क्षेपक तो जुड़ ही रहे थे। नई रामाख्याएँ भी आ रहीं थीं। जिस तरह से वोल्फ ने अपनी पुस्तक प्रोलंगोमेना में सिद्ध किया कि होमर की इलियड और ओडेसी मूलतः एक बीज कथा (कर्नेल) थी जिसके बाद में विस्तार (expansions) होते रहे, उसी तरह से वाल्मीकि की रामायण के बारे में भी ऐसा कुछ होना असंभव नहीं था। इलियड के बारे में एक निष्पत्ति यह है कि वह कम से कम चार शताब्दियों में लिखी गई। वैसे ही रामायण में भी पूर्णतः फैंसीफुल परतें जोड़ी जा रहीं थीं। कभी ब्राह्मणों की महत्ता दिखाने के लिए तो कभी कथानक में नाटकीयता के लिए भी। लेकिन इन्होंने कई जगह कथा की हार्मनी और यूनिटी को तोड़ा। आलोचकों की हालत यह है कि प्रशंसा के लिए जो उत्तरकांड उन्हें क्षेपक प्रतीत होता है, आलोचना के लिए वही उद्धरणीय हो जाता है। ऐसे समय में तुलसी के लिए ज़रूरी था कि राम कथा रिटच और रिहैंडल की जाए। राम की इतनी आख्याएँ चल पड़ी थीं कि आज तक लोकस्मृति में रामकहानी शब्द एक मुहावरे की तरह चलता है। फैज़ अहमद फैज़ कहते हैं : 'क्यों मेरा दिल शाद

नहीं, क्यों ख़ामोश रहा करता हूँ/छोड़ो मेरी राम कहानी मैं जैसा भी हूँ अच्छा हूँ।' तुलसी इस आख्यान की वीथियों से होकर जब गुज़रे तो रामकहानियों की उस परम्परा से अवगत थे बल्कि इन रामाख्यानकों के 'गुप्त एजेंडे' तक को भी वे जान रहे थे।

छवि आख़िरकार करती क्या है? 'ध्यान में तेरे कभी बैठूँ तो क्या बैठूँ बता/जब तलक तेरा तसव्वुर भी तेरे जैसा न हो।' तुलसी ने ब्रह्म को राम की सूरत दी। एक फेसलेस मेजॉरिटी को फेसलेस ब्रह्म् से आश्वासन मिलता-सा नहीं लग रहा था बल्कि बुतशिकन लोग सारी मूर्तियाँ तोड़े डाल रहे थे। जो मूर्ति को महत्वपूर्ण नहीं समझते थे उनका आब्सेशन मूर्ति बन गया था। तो तुलसी ने तय किया कि वे एक ऐसी छवि रचेंगे जिसे जनता हृदय में धारण करेगी, जहाँ से उसे कभी तोड़ा न जा सकेगा। रामाख्यान के ज़रिए उन्होंने एक व्हाइसलेस मेजॉरिटी को शब्द दिए। बिना प्रिंटर और पब्लिशिंग के उनके शब्द करोड़ों भारतीयों की ज़ुबान पर अंकित हो गए। एक-एक हर्फ़ पढ़ लिया दिल की किताब का/पढ़कर कभी रटा नहीं सब याद हो गया/पलकों के पास आके रुक गए ख़्वाबों के काफ़िले/पानी के पास शहर सा आबाद हो गया। राम की वह हृदयद्रावक, वह मर्मस्पर्शी कथा उन्होंने कही कि मूर्तिभंजक लोग आज तक बेचैन हैं। मूर्ति शिल्प के रूप जड़ित थी, मूर्ति आख्या के रूप में गतिमान रही। मध्यकाल भारत का पाषाण युग था क्योंकि सत्ता की चिन्ता का केन्द्र पाषाण था। पत्थर तोड़कर पाषाण युग में हथियार बनाए गए थे। अब पत्थर तोड़ने को एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा रहा था। अहमद नदीम काज़मी की एक कविता है : 'जितने मेआर हैं इस दौर के सब पत्थर हैं।' उस दौर के आदर्श यही पत्थर थे। अकल पर पत्थर पड़ गए थे। सभ्यता का विकास पत्थरों को आकृति देने और सभ्यता का चरम पत्थरों की प्राणमयता तक का ज्ञान करने में है लेकिन मध्यकाल में वह एक प्रतिगामी वक़्त भी था जब सभ्यता को पूर्वपाषाण काल में लौटने की जल्दी थी। पत्थरों से आकार हटाने, उन्हें विरूपित करने की हड़बड़ी। सभ्यता का विकास तब है जब पाषाण में भी हृदय खोजा जा सके, सभ्यता का विनाश तब है जब हृदय को भी पाषाण बना लिया जाए। सीना के जंगल में एक तूर नाम का पहाड़ है जिसे ख़ुदा ने अपनी क़ुदरत से ऊपर उठाया और मूसा पैग़म्बर की क़ौम से कहा कि मेरी किताब पर अमल करो वरना यह पहाड़ तुम पर गिरा दूँगा। शकील ग्वालियरी का एक शेर इसी बाबत है : मैं आदमी हूँ ख़ुदा की भी मानता हूँ तब/उठा के सर पे मेरे जब वो तूर रखता है। तुलसी जिस संस्कृति के थे वहाँ पत्थर में भी पूजा थी। पत्थर आराधन था, अस्त्र नहीं। पत्थरों को प्राण देने वाला नमन था। उनके बरक्स समाँ दूसरा था। पत्थर की धमकी जहाँ चलती हो, पत्थर की पूजा वहाँ क्या चलती। लेकन तुलसी ने उसका उपचार यह किया कि राम हर भारतीय के मेंटल मैप का अंग हो गए। रामचरितमानस की सार्थकता ही यह थी कि रामचरित हमारे मानस का हिस्सा हो गया। रामाख्यान को पढ़ते समय यह हीन भावना लेकर चलने की ज़रूरत नहीं है कि विज्ञान ने इसके विरुद्ध निर्णय दे दिया है। वैज्ञानिक सत्य भी तयशुदा और जड़ स्थिरताएँ नहीं हैं। विज्ञान एक बात है और विज्ञान के हवाले से तुलसी पर टीप देने वालों के अभिमत एक बात। इतिहास पूर्व और प्रागैतिहासिक जिन समस्याओं को तुलसी प्रस्तुत करते हैं, विज्ञान उनकी ओर बढ़ा तो है लेकिन वहाँ तक पुहँचा नहीं है। जो लोग भारत के इतिहास को कार्बन डेटिंग और रिमोट सेंसिंग जैसे आधुनिक वैज्ञानिक साधनों से पढ़ने के प्रति अनिच्छुक ही नहीं हैं, बल्कि भयभीत भी हैं, उनकी विज्ञान के प्रति बहुत गहरी निष्ठा भी नहीं है। इसलिए उनकी वैज्ञानिक धमकियों से मत चमकें। सही वैज्ञानिक मस्तिष्क कभी धमकियाँ नहीं देता।

रामचरितमानस की विशेषता यह है कि वह किसी शासक आभिजात्य वर्ग के लिए नहीं लिखी गई। वह कोई दरबारी कविता नहीं है। मानस के सृजन के वक़्त एक धनाढ्य एरिस्टोक्रेसी भारत के लिए पराए जीवन-मूल्यों पर वैसे ही पल रही थी जैसे कि मैकाले और मार्डोक के युग में आज पल रही है। धर्म के नाम पर चल रहे पाखंड के प्रति तुलसी की घृणा कबीर से कम तीखी नहीं थी, हालाँकि आजकल के छद्म धर्मनिरपेक्षतावादियों को यह स्वीकारना कठिन पड़ता है। सिर्फ़ इसलिए कि कबीर नाम से ही एक मिश्रित सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं और तुलसी का नाम ज़रा पंडिताऊ (गोस्वामी) और शुद्धतावादी लगता है। जो व्यक्ति अपने समय की आलोचना इतने निष्ठुर और निर्मम तरीक़े से करता है कि अपने वक्तव्य की अंतर्निहित सच्चाई के कारण आज भी वह आलोचना प्रासंगिक लगती है, उसके बारे में यह संकीर्णता। सुनिए तुलसी की फटकार : जे जनमे कलिकाल

कराला/करतब बायस बेष मराला/चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े/कपट कलेवर कलि मल भाँड़े/बंचक भगत कहाइ राम के/किंकर कंचन कोह काम के : क्या आपको ये शब्द आज भी चरितार्थ होते नहीं लगते। दरअसल कबीरदास हों या तुलसीदास या सूरदास, मध्यकालीन कविता में भी एक दास वंश था। कुतुबुद्दीन ऐबक वाला राजनीतिक दास वंश तो अपनी मुसाहबी, अपना सामंतवाद और अपना आभिजात्य विकसित कर देश की सतत् प्रवाहिनी जीवनधारा से कट चुका था, लेकिन इस साहित्यिक दास वंश की पहचान ही यह थी कि इसने जनता के सरोकारों से अपने को जोड़ा। सभी का अंदाज़े बयाँ जुदा-जुदा था, लेकिन उन दासवंशियों ने ही देश के आत्म और स्वाभिमान की रक्षा की। भगवान की दासता स्वीकार करने वाला यह साहित्यिक वंश जहाँ इस तरह से अपनी मुक्ति की घोषणा कर रहा था, वहीं समय की कड़वाहटों को अतिक्रान्त भी कर रहा था। भगवद्निष्ठा के साहित्य को समय-सीमित होना संभव ही नहीं था। तुलसी ने योद्धाओं के वर्णन तक में अपने समय के योद्धाओं के परिधानों, हथियारों और परिपाटियों की छाया नहीं पड़ने दी क्योंकि उनकी ऑडियेंस सामंती नहीं थी। वे उसे संबोधित भी नहीं करना चाह रहे थे और उसे किसी तरह की ख़ुशफ़हमी में भी नहीं रखना चाह रहे थे। वे तो उस आम जनता के उपचार के लिए रामचरितमानस का 'सोनिक बाथ' (श्रव्य स्नान) लेकर आए थे (मानस यदि मानसरोवर जैसा है तो) जो शासक वर्ग के एक आक्रामक और दुश्मनाना रवैये से आहत थी। शासन की उस शैली के विरुद्ध कोई बात कहने का तब तक कोई अर्थ नहीं था जब तक कि राजनय व शासन की एक वैकल्पिक शैली को प्रस्तुत नहीं किया जाता। बिना विकल्प का विरोध मानसिक नपुंसकता होती। एक सांस्कृतिक आदर्श की पुनर्स्मृति कराकर तुलसी ने कंट्रास्ट के अहसास को और तीखा कर दिया है। बात सिर्फ़ मूर्तियों के विखंडन की नहीं है। एक विखंडन और हुआ था। दर्शन का काम पहले सभी चीज़ों को साथ-साथ देखने का होता था। तुलसी के समय तक आते-आते उस दर्शन में भी सुपर स्पेशियलिटीज़ विकसित हो गई थीं। अलग-अलग तरह की दार्शनिक एंटरप्राइज़ थीं। भारत की विरासत का प्रयोग कर जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने की कोशिशें नहीं हो रही थीं। तुलसी जीवन के समग्र का चित्र खींच रहे थे। उनका साकार का आग्रह दरअसल मेनीफेस्ट का आग्रह था। साकार के रूप में मूर्ति लौटी। इसी मूर्ति के विरुद्ध सारे हमले थे। लेकिन अब यह प्रतिमा एक प्रतिभा के स्पन्दन से दीप्त है। मूर्ति एक ही वक़्त स्मृति भी थी और निर्मिति भी। यह मूर्तीकरण (idolization) ठीक उसी समय एक आदर्शीकरण (idealization) भी था। दार्शनिक सिद्धांतों की कंदराओं में तुलसी राम की मशाल लेकर घुसे, और एक स्टीरिओस्कोपिक विज़न के साथ लौटे। वे राम के स्वभाव का वर्णन नहीं कर रहे थे, वे राम के चरित्र का वर्णन कर रहे थे। रामचरितमानस राम के चरित्र की अभिव्यक्ति है, अँग्रेज़ी शब्द कैरेक्टर (character) के अर्थों में। यह अर्थ लेने में हिचक इसलिए नहीं होना चाहिए क्योंकि/१० शब्द हमारे चारित्र्य शब्द का ही अपभ्रंश है। चरित्र की पहचान चयन के क्षण होती है। चरित्र की पहचान संकट (क्राइसिस) के क्षण होती है। स्वभाव तो प्रतिपल-प्रतिक्षण प्रकट होता है और अवचेत रहता है लेकिन चरित्र की परीक्षा निर्णय के मुहाने पर होती है। स्वभाव तो सोया हुआ है, चरित्र जागा हुआ। भारत को जगाने के लिए राम जैसे किसी चरित्र की ही आवश्यकता थी क्योंकि स्वयं भारत भी संकटग्रस्त था। राम नाम का यह व्यक्ति आदत और इंपल्स में निर्णय लेता हुआ पूरे रामचरितमानस में नहीं दिखेगा। अपने समय की निर्लज्ज चरित्रहीनता के समानान्तर तुलसी ने यह चरित्र रख दिया। सईद राही का एक शेर है : मैं तो अख़लाक के हाथों ही बिका करता हूँ/और होंगे तेरे बाज़ार में बिकने वाले। मूर्ति अब एक चरित्र में बदल गई। अब वह सिर्फ़ खड़ी न थी। अब वह सिर्फ़ आसीन न थी। अब वह लगातार संभवा थी, क्रिया थी, शामिल थी। इतिहास इसका गवाह है कि आक्रान्ता तुलसी के इस दाँव का कोई उत्तर न दे सका। आक्रान्ता वर्ग से कोई ऐसी समान्तर रचना नहीं आई कि जो तुलसी के इस प्रयास की होड़ में होकर कन्वर्शन करती। तलवार का कन्वर्शन तुलसी जैसों के चलते भारत में सफल नहीं हो सका, अन्यथा उस आँधी में विश्व के १९२ में से ५१ देश अपनी मूल पहचान पूरी तरह खो बैठे। तलवार वि. तुलसी का यह द्वन्द्व कोई आमने-सामने का द्वन्द्व नहीं था। दोनों अपनी-अपनी परिधियों में काम कर रहे थे। जब तलवार पत्ते काट रही थी

> *तुलसी जीवन के समग्र का चित्र खींच रहे थे। उनका साकार का आग्रह दरअसल मेनीफेस्ट का आग्रह था। साकार के रूप में मूर्ति लौटी। इसी मूर्ति के विरुद्ध सारे हमले थे। लेकिन अब यह प्रतिमा एक प्रतिभा के स्पन्दन से दीप्त है। मूर्ति एक ही वक़्त स्मृति भी थी और निर्मिति भी।*

और कभी-कभी शाखाएँ भी, तुलसी जड़ों का सिंचन कर रहे थे।

लेकिन 'रामाख्यं' का अर्थ यह नहीं है कि राम एक आख्यान या एक गल्प मात्र थे और इतिहास में नहीं थे। आख्या का अर्थ उक्ति या व्याख्या है। आख्यात का अर्थ ऐतिहासिक और प्रसिद्ध है। आख्याति का अर्थ है कथन। आख्यान कथन, वर्णन, वृत्तांत, बात, कहानी, पुराणकथा, मिथक कुछ ही हो सकता है। आख्यायिका कहानी, किस्सा, छोटी कहानी, पुराणकथा, वृत्तांत है। रामाख्यं राम की तुलसी के द्वारा की गई व्याख्या भी है। राम के इतिहास में होने के बारे में संदेह करने की जगह इतिहासकार अब ज्योतिर्विधागत डेटिंग का सहारा ले रहे हैं। ऋषि वाल्मीकि ने सितारों और ग्रहों की स्थितियों के ज़रिए बहुत सी घटनाओं का बयान किया है। प्राचीन भारत में कालगणना की वही प्रविधि चलती थी। तिथियों का उल्लेख होता था - नक्षत्रों के माध्यम से। महाभारत में रामायण के बहुत से तथ्यों का उल्लेख है किन्तु रामायण में महाभारत के प्रसंगों का नहीं। इसका अर्थ है कि रामायण महाभारत से पूर्व के घटनाक्रम को चित्रित करती है। ४६०० ई.पू. की त्रैतिरीय ब्राह्मण में रामायण के लेखक गुरु वाल्मीकि का उल्लेख यह बताता है कि ब्राह्मण रचे जाने से पूर्व रामायण लिखी जा चुकी थी। महाभारत विश्वामित्र को नक्षत्रों के अनुसार कालगणना का आरंभ करने वाले ऋषि के रूप में वर्णित करती है। राम के जन्म के समय वाल्मीकि के अनुसार चैत्र सुदी नवमी थी, पुनर्वसु नक्षत्र था। सूर्य मेष में दशम डिग्री पर थे, मंगल वृश्चिक में २८ डिग्री, गुरु कर्क में ५ डिग्री पर थे। इसके आगे के और ज्योतिषीय विवरण मिला लें तो विद्वानों के अनुसार ४ दिसम्बर ७३२३ ई.पू. की स्थिति बनती है। राम १७ साल की उम्र में थे जब चैत्र सुदी नवमी पुष्य दिवस पर उनका राज्याभिषेक तय हुआ था। इस कालगणना की विशेषता यह है कि यह वाल्मीकि के वर्णनों और विवरणों का इस्तेमाल करती है और उनके बताए गए रूपकों के भी नक्षत्रीय आयामों का विश्लेषण करती है। एतद्नुसार राम कथा की तिथियाँ इस प्रकार हैं :-

राम का जन्म - ४ दिसम्बर ७३२३ ई.पू.
राम सीता विवाह - ७ अप्रैल ७३०७ ई.पू.
राम वनवास - २९ नवम्बर ७३०६ ई.पू.
हनुमान का लंका प्रवेश - १ सितम्बर ७२९२ ई.पू.
हनुमान का सीता को मिलना - २ सितम्बर ७२९२ ई.पू.
सेतु निर्माण - २६-३० अक्टूबर ७२९२ ई.पू.
युद्धारम्भ - ३ नवम्बर ७२९२ ई.पू.
कुम्भकर्ण वध - ७ नवम्बर ७२९२ ई.पू.
रावण वध - १५ नवम्बर ७२९२ ई.पू.
राम की अयोध्या वापसी - ६ दिसम्बर ७२९२ ई.पू.

कैम्ब्रिज, इंग्लैण्ड से प्रकाशित होने वाली शोध पत्रिका 'एंटीक्विटी' में १९८१ में रामायण की ऐतिहासिकता पर एक शोधपत्र प्रकाशित हुआ था। १९८८ में नई दिल्ली में भारतीय ऐतिहासिक शोध परिषद् के सेमीनार में प्रो. बी.बी. लाल ने ६० पृष्ठों का शोधपत्र रामायण और महाभारत की ऐतिहासिकता पर प्रस्तुत किया था और पुरातात्विक हवाले दिए थे। न्यूयार्क में रहने वाले निरंजन शाह ने 'हिस्टारिसिटी ऑफ़ रामायण' नामक पुस्तक लिखी है। इसके बावज़ूद प्रो. आर.एस. शर्मा, और उन जैसे बंधुओं का एक बड़ा समूह इस मान्यता का है कि राम और कृष्ण का ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलता।

यह इतिहास की भली चलाई। इसकी झाड़ू से राम की भी पिटाई की जाती है और जीसस की भी। राम को अनैतिहासिक और कवि कल्पना प्रसूत बतलाना इन दिनों बहुत ज़्यादा ज़ोरों पर है। इसके पीछे एक कारण तो राम का आधुनिक युग में एक राजनीतिक इकाई की तरह उभरना है। राम स्वयं तो राजनीति त्यागकर असमय ही वन को प्रस्थान कर गए थे, लेकिन हमारे समय में उस आयाम के तर्कों - प्रति तर्कों के केन्द्र में जीवन्त रूप से विद्यमान हैं। चूँकि एक पक्ष को राम के एप्रोप्रिएशन का लाभ लेना है तो दूसरे पक्ष को अपना विरोध राम को एक गल्प या एक कथा के रूप में बताकर ही जताना है। हाल में राज्यसभा के एक आधिकारिक उत्तर में राम को एक काल्पनिक पात्र बताया गया है। जिस तरह से राम देश की चेतना की एक खास तरह से प्रोग्रामिंग में न्यस्त हुए हैं; उतना ही उन्हें अनैतिहासिक सिद्ध करने का यत्न बढ़ रहा है। गाँधीजी मरते वक़्त 'हे राम' बोले, इस पर भी बहस है। गाँधी के साथ ही रहने वाले व्ही. कल्यानम् का कहना है

> न्यूयार्क में रहने वाले निरंजन शाह ने 'हिस्टारिसिटी ऑफ़ रामायण' नामक पुस्तक लिखी है। इसके बावज़ूद प्रो. आर.एस. शर्मा, और उन जैसे बंधुओं का एक बड़ा समूह इस मान्यता का है कि राम और कृष्ण का ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलता।

> आर.जी. प्राइस का कहना है कि न उन्होंने चमत्कार किए होंगे, न वे मरकर जीवित हुए होंगे, लेकिन हाँ, वे एक महान नैतिक शिक्षक तो ज़रूर रहे होंगे जो गैलिली घूमे, अपने अनुयायियों के साथ, जो यहूदियों द्वारा गिरफ़्तार हुए और जो सलीब पर चढ़ा दिए गए।

कि गाँधी ने ऐसे कोई शब्द नहीं उच्चरित किए किन्तु गाँधी की 'घूमने वाली छड़ी' कहलाने वाली मनु और आभा, जो उस वक़्त भी गाँधीजी के साथ थीं जब उन्होंने प्राण त्यागे, ने श्री कल्यानम् के कथन का खंडन किया है। राम तो गाँधी के हृदय और चेतना में ही नहीं रचे-बसे थे, वे गाँधी के राजनीतिक आदर्श 'रामराज्य' को भी चरितार्थ करते थे। दिसम्बर १९४७ में मानो अपनी मृत्यु का पूर्वाभास-सा उन्हें हो गया था, इसलिए तब गाँधीजी ने लिखा : 'अंत में होगा वही जो राम मुझे आदेश देंगे। सबहिं नचावत राम गोसाईं। मैं उसके हाथों में हूँ और इसलिए अनंत शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ।' गाँधी की सभाओं में रामनाम का घोष गूँजता ही था, लेकिन फिर भी मृत्यु के वक़्त 'हे राम' कहना कुछ भले लोगों की दृष्टि में एक 'फिक्शन ऑफ़ इमेजिनेशन' है। जब दो शब्दों पर इतनी आपत्ति है तो समूचे राम पर कितनी होगी। स्वयं गाँधीजी राम और कृष्ण को सिर्फ ऐतिहासिक पात्र मानने के 'ख़तरनाक़ रास्ते' के प्रति लोगों को मृत्यु के कुछ दिनों पहले सावधान कर रहे थे। तुलसीदास तो स्वयं इसे 'रघुनाथगाथा' कह रहे थे। वे तो रामचरितमानस के प्रारंभ में ही 'तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की' कहते हैं, 'करिहउँ रघुपति कथा सुहाई' कहते हैं, वे कहते हैं 'जागबलिक जो कथा सुहाई', वे कहते हैं 'कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी' और यह क्रम लगातार चलते हुए जब मानस के अंत तक पहुँचता है तो तुलसी कहते हैं :- 'मति अनुरूप कथा मैं भाषी', 'तब मैं रघुपति कथा सुनाई', 'भाव सहित सो यह कथा', 'सुनि सब कथा हृदय अति भाई,' 'राम कथा गिरिजा मैं बरनी'। तुलसी इतिहास नहीं लिख रहे। वे स्टोरी टेलिंग में व्यस्त हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे राम की अनैतिहासिकता पर कोई अंतिम निर्णय कर रहे हैं। वे तो एक महाकाव्य का सृजन कर रहे हैं। इतिहास लिखने की जगह वे एक इतिहास बना रहे हैं।

लेकिन महापुरुषों को मिथक मानने की प्रवृत्ति सिर्फ़ भारत तक सीमित नहीं है। आज के पश्चिमी बुद्धिजीवी इस क्रम में जीसस तक को नहीं छोड़ रहे। वे जीसस को मिथक नहीं बल्कि छलना (फोर्जरी) और मनगढ़ंती (hoax) तक कह रहे हैं। १९९९ में ही पाँच पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनमें निष्कर्ष निकाला गया कि गोस्पेल के जीसस कभी अस्तित्व में थे ही नहीं। जार्ज अल्बर्ट वैल्स ने 'द जीसस लीजेंड' और 'द जीसस मिथ' जैसी पुस्तकें लिखी हैं। टिमोथी फ्रेंक की पुस्तक 'द जीसस मिस्ट्रीज' और पीटर गैंडी की पुस्तक 'जीसस एंड द लॉस्ट गॉडेस' भी ऐसी ही पुस्तकें हैं जो जीसस की अनैतिहासिकता को सिद्ध करती हैं। अर्ल डोहर्टी की पुस्तक 'द जीसस पज़ल' भी इसी श्रेणी की है।

संदेहवादियों के तर्क बहुत से हैं। उनका कहना है कि जीसस ऐतिहासिक होते तो उनके समकालीन लक्ष्य नहीं होते! जीसस का सीधा पुरातात्विक साक्ष्य क्यों नहीं मिलता? आर.जी. प्राइस का कहना है कि न उन्होंने चमत्कार किए होंगे, न वे मरकर जीवित हुए होंगे, लेकिन हाँ, वे एक महान नैतिक शिक्षक तो ज़रूर रहे होंगे जो गैलिली घूमे, अपने अनुयायियों के साथ, जो यहूदियों द्वारा गिरफ़्तार हुए और जो सलीब पर चढ़ा दिए गए। अफ़सोस, यह भी नहीं है। आलोचकों के मत में साक्ष्यों का गंभीर परीक्षण बताता है कि जीसस क्राइस्ट की सर्वोत्तम व्याख्या वह है जिसे हम मिथकशास्त्र कहते हैं। जॉन एम. एलीग्रो ने तो कुछ ज़्यादा ही कड़े शब्दों में ईसाइयत को भ्राँति पैदा करने वाले कुकुरमुत्तों के उपयोग पर आधारित धर्म कहा है- हैल्यूसिनोजेनिक मशरूम्स पर। जोसेफ व्हेलेस ने १९३० में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक फोर्जरी इन क्रिश्चियनिटी (ईसाइयत में कूटरचना) लिखी। जीसस की ऐतिहासिकता में अविश्वास प्रारंभिक ईसाइयत में ही शुरू हो गया था। लेकिन जब ईसाइयत साम्राज्य का धर्म बनी, राज्य और चर्च के बीच परस्पर सुविधा के रिश्ते बन गए तो असहमति के स्वर नृशंसता से कुचले जाने लगे। अब इस नई सदी के दौर में जीसस को ऐतिहासिक ठहराने वाले सारे तर्कों का डेविड केंट ने क्रमबद्ध खण्डन किया। इसे बिन्दुवार यों प्रस्तुत किया जा सकता है :

जीसस के 'होने' के साक्ष्य

१. थैलस ने ५२ ई. में एक नास्तिक व्यक्ति की 'प्रकृतिवादी व्याख्या' के तहत उस अंधकार का उल्लेख किया था जो क्राइस्ट को सलीब पर चढ़ाते वक्त हो आया था।

'साक्ष्यों' की कमज़ोरी

थैलस ने अंधकार का उल्लेख किया, लेकिन किसी जीसस का नहीं। उसने सिर्फ़ सूर्यग्रहण का उल्लेख किया था। २२१ ई. में सेक्सटम जुलियस अफ्रीकानस नामक ईसाई

लेखक ने थैलस के द्वारा वर्णित इस सूर्यग्रहण-कारित अंधकार पर टीप की है। उसने भी जीसस का उल्लेख नहीं किया।

२. मारा बार सेरापिऑन ने ७३ ई. के बाद अपने पुत्र को लिखे पत्र में कहा कि : 'यहूदियों को अपने बुद्धिमान राजा को मौत की सज़ा देने से क्या फायदा हुआ? ... वह तो अपनी शिक्षाओं के ज़रिए ज़िन्दा रहा।

यह सीरियन लेखक जीसस का आँखों देखा गवाह नहीं है। यह जीसस का नामोल्लेख नहीं करता। यह 'बुद्धिमान राजा' के फिर से ज़िन्दा हो जाने का उल्लेख नहीं करता। वह सुनी सुनाई कहानी को अपने बेटे को बता रहा है। जीसस कभी राजा नहीं थे।

३. जोसेफस बेन माथियस ने लिखा 'अब इस वक्त जीसस था- एक बुद्धिमान आदमी, यदि उसे आदमी कहना क़ानूनी रूप से सही हो। वह क्राइस्ट था और जब पाइलेट ने उसे क्रास पर चढ़ाया... वह उन्हें तीसरे दिन फिर ज़िन्दा दिखाई दिया।'

जोसेफस ने ऐसा कभी लिखा ही नहीं। अलेक्जेंड्रिया का क्लीमेंट (१५०-२१५ ई.) जोसेफस के लेखन का विस्तृत उल्लेख करता है किन्तु इस कथन का कहीं नहीं। इस पैराग्राफ का पहला उल्लेख यूसेबिअस ने ३२४ में किया। उसे ही इस 'क्रूटरचना' का श्रेय दिया जाता है। जोसेफस की मृत्यु के दो सौ वर्ष बाद तक उसकी पुस्तक 'एंटीक्विटीज़ ऑफ़ द ज्यूस' (यहूदियों का इतिवृत्त) में क्राइस्ट का उल्लेख न था। इस उल्लेख की भाषा यूसेबिअस की है, जोसेफस की नहीं। इस अचानक ठूँसे गए अनुच्छेद का जोसेफस के वर्णन के न तो पहले प्रसंग/संदर्भ से कोई संबंध है, न इसके ठीक बाद आए विवरण से। यह तो वर्णन की गति को बाधित करता है। बिशप वारबर्टन इसे 'शुद्ध धोखाधड़ी' कहते हैं। डीन मिलमेन इसे क्षेपक (इंटरपोलेशन) कहते हैं। चैम्बर्स एनसाइक्लोपीडिया भी। यूसेबिअस स्वयं एक ऐसा व्यक्ति था जो चर्च के लिए झूठ बोलना सहज स्वीकार्य मानता था। उसके बाद 'पवित्र छल' (होली फ्राड) करने का फैशन चल पड़ा।

४. कार्नेलियस टैसीटस ने १२० ई. में लिखा : 'नीरो ने उस श्रेणी के लोगों को दंडित किया जिनकी आदतें बुरी थीं और जिन्हें भीड़ क्रिश्चियन कहती थी। इसका संस्थापक क्राइस्टस था जिसे टाइबेरियस के शासन में मृत्युदंड मिला था, पाइलेटस नामक प्रोक्यूरेटर के हाथों।'

टेसीटस उसी कहानी को दुहरा रहा है जो क्रिश्चियनों ने उसे सुनाई थी। वह किसी अधिकृत अभिलेखागार का उल्लेख नहीं करता। पाइलेटस एक प्रिफेक्ट था, प्रोक्यूरेटर नहीं। क्राइस्टस भी कोई 'प्रापर नेम' की तरह नहीं उपाधि की तरह प्रयुक्त हुआ। टैसीटस के इस वर्णन को पांचवीं शती तक किसी ने उद्धृत नहीं किया। वैसे भी टेसीटस जीसस के सौ-डेढ़ सौ वर्षों बाद हुआ। टेसीटस ने जीसस शब्द का प्रयोग किया ही नहीं। यही पैरा शब्दशः सल्पिसिश्रम सर्वरस (४०३ ई.) के क्रानिकल में भी मिलता है।

५. मैक्डावेल के द्वारा पक्ष में दिए तर्कों में से यह भी है कि एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के ताज़ा संस्करण में जीसस के लिए २० हजार शब्द हैं। अरस्तू, सिसरो, अलथ्रेंद्र, जूलियस सीज़र, बुद्ध, कन्फ्यूशियस, मोहम्मद या नेपोलियन बोनापार्ट से भी ज़्यादा।

यह तर्क ऐतिहासिकता को सिद्ध करने की दृष्टि से बहुत हास्यास्पद है। इस ग्रंथ में हरक्यूलिस और ओडीसियस पर भी पन्ने दर पन्ने भरे गए हैं। लेकिन इससे वे ऐतिहासिक नहीं हो जाते। यों तो ब्रिटेनिका में ड्रेगन, यूनिकार्न और चुड़ैलों पर भी पन्ने भरे गए हैं। गिनाए गए नामों से ज्यादा शब्द जीसस पर होना ब्रिटेनिका का पक्षपात होगा।

६. सुएटोनियस ने क्रेस्टस का उल्लेख किया है - कि उसके उकसाने पर शान्ति भंग करने वाले यहूदियों को क्लाडियस ने रोम से निकाल दिया।

क्राइस्ट और क्रेस्टस दो अलग-अलग शब्द हैं। क्रेस्टस का मतलब होता है 'श्रेष्ठ'। क्राइस्ट का मतलब होता है 'मसीहा'। ५५ ई. में जीसस रोम में कैसे हो सकते थे।

जीसस को जिस समय का 'ऐतिहासिक व्यक्ति' बताया जाता है, उस समय के किसी लेखक या इतिहासकार- चाहे वह यहूदी हो, ग्रीक हो, रोमन हो या पैगन- ने जीसस या उनके किसी शिष्य का उल्लेख नहीं किया। एरियन, प्लूटार्क, अपोलोनिस, हर्मोगोन्स, अप्पियन, डेमिस, औलूस, जेलियस, अलेक्ज़ेंड्रिया का अप्पियन, फिलो जूडेइयास, पेट्रोनियस, जूवेनल, क्विंटिलियन, सिलियस, इटेलिकस, प्लोगोन, पौसानिअस, सेनेका, डिओ क्रिसोस्टोम, फेवररिनस, मार्शल, ल्यूकेनेस, स्टेटिअस, डिअन प्रूसियस, फैट्रस, फ्लोरस, ल्यूशियस, कोल्यू मेला, लिसियास, थिओन ऑफ़ मिर्ना, प्लिनी द एल्डर, पेटर क्यूलस, पर्सियस ऑफ टाइबेरियस, एपिक्टेटस, टॉल्मी, वेलेरियस, मैक्सिमस, क्विंटियस कर्टिअस, वेलिरिअस फ्लैकस, पाम्पेनियस मेला आदि-आदि में से किसी ने भी इतने महान और विलक्षण आदमी को एक शब्द के लायक भी नहीं समझा। ग्रीस, रोम, फिलिस्तीन में उस वक़्त दार्शनिकों, इतिहासकारों, वक़्ताओं, न्यायविदों और राजनीतिज्ञों की कमी न थी। लेकिन किसी ने भी जीसस के बारे में एक पंक्ति, एक शब्द तक नहीं लिखा। चार्ल्स एफ ड्यूपिआस, राबर्ट टेलर, डेविड स्ट्रास, कर्सी ग्रेव्स, जॉन राबर्टसन, थामस विट्टेकर, राबर्ट आर्थर ड्यूस, पीटर जेन्सन, विलियम बी. स्मिथ, एल.काऊचोड, जॉन रेम्सबर्ग जैसे

आधुनिक लेखकों ने जीसस के गैर-ऐतिहासिक होने को सिद्ध किया है। जोसेफस की कृतियों और बाइबल में कम से कम २१ तरह के जीसस हैं, हैराल्ड लीडनर ने अपनी पुस्तक 'द फैब्रिकेशन ऑफ़ द क्राइस्ट मिथ' में बताया है।

जीसस की ऐतिहासिकता पर संदेहवादियों द्वारा कई प्रश्न सामने खड़े किए गए हैं। उनका कहना है कि क्राइस्ट का वर्णन तो न्यू टेस्टामेंट के चार गोस्पेल में मिलता है- मैथ्यू, मार्क, ल्यूक और जॉन। लेकिन ये चारों कौन सज्जन थे, इसका कोई उल्लेख टेस्टामेंट के बाहर किसी ग्रंथ में नहीं है। गोस्पेल स्वयं भी दावा नहीं करते कि वे इन चारों के द्वारा लिखे गए हैं। वहाँ गोस्पेल ऑफ़ मैथ्यू नहीं है, गोस्पेल 'अकार्डिंग टू मैथ्यू' है। यह बात बाक़ी के साथ भी है। कोई भला आदमी नहीं जताता कि वे कब लिखे गए। विद्वान मार्क के गोस्पेल को सबसे पुराना कहते हैं लेकिन उसमें वर्जिन बर्थ, पर्वतोपदेश, भगवान की प्रार्थना जैसी चीजें नहीं है। ये फीचर्स बाद में मैथ्यू और ल्यूक में जोड़े गए। मार्क में क्राइस्ट एक आदमी है। मैथ्यू और ल्यूक में वह एक डेमिगॉड है और जॉन में वह स्वयं ईश्वर है। इन चारों गोस्पेल का पहला ऐतिहासिक उल्लेख १८० ई. से १९० ई. के बीच हुआ। क्राइस्ट की मृत्यु के डेढ़ सौ साल बाद। क्राइस्ट तो यहूदी माने जाते हैं, उनके शिष्य यहूदी मछुआरे। उनकी भाषा अरामिक रही होगी क्योंकि तब के फ़िलिस्तीन में वही भाषा प्रचलित थी। लेकिन सभी गोस्पेल ग्रीक में हैं। यानी वे न तो क्राइस्ट के शिष्यों द्वारा और न प्रारंभिक ईसाइयों द्वारा लिखे गए। ये गोस्पेल भी दूसरी शती के नहीं हैं। ये उन मूल की प्रति की प्रति हैं। इनकी प्राचीनतम प्रतिलिपि और इनमें तीन सौ सालों का फ़र्क़ है। ऐतिहासिकता की हालत यह है कि मैथ्यू जीसस की वंशावली में ४१ पीढ़ियाँ बताता है, ल्यूक ५६। जीसस पैदा कब हुए? एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार मसीहा के जन्म वर्ष के बारे में १३३ परस्पर विरोधी अभिमत हैं। जीसस का जन्म स्थान तय नहीं है। बेथलेहम कि नाज़ेरथ? जन्म के बाद तीस साल तक जीसस के जीवन में क्या हुआ, इसका चारों गोस्पेल में कोई उल्लेख नहीं। सिवाय ल्यूक में १२ वर्षीय जीसस के जीवन की एक घटना के। ये चारों गोस्पेल अपने नायक के जीवन के शुरुआती तीन दशकों के बारे में एकदम चुप क्यों हैं? जीसस का बचपन, जीसस का कैशोर्य, जीसस का यौवन कहीं नहीं वर्णित किया गया। शुरुआत की पहली आठ शताब्दियों में ईसाई कलाकारों ने क्रॉस पर एक मेमने को दिखाया, एक मनुष्य को कभी नहीं। न चित्रों में, न शिल्पों में। कभी एक मेमना सलीब ढोते हुए दिखाई दिया। कभी सलीब के नीचे बैठा हुआ, कभी सलीब पर। आठवीं शताब्दी में पोप हेडियन प्रथम ने कास्टेन्टिनोपल के छठवें साइनोड की डिक्री की पुष्टि करते हुए आदेश दिया कि मेमने की जगह सलीब पर आदमी की आकृति दिखाई जाए। स्विट्ज़रलैंड के, नए टेस्टामेंट के प्रोफेसर डॉ. पॉल स्कमीडेल यूरोप के प्रमुख धर्मशास्त्रियों में से हैं। वे एन्साइक्लोपीडिया बिब्लिका में हमें बताते हैं कि गोस्पेल में सिर्फ़ नौ ही ऐसे पैरा हैं जिन्हें हम जीसस के कथन की तरह मान सकते हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर आर्थर ड्रूज़ ने इन नौ पैरों का भी अध्ययन किया और कहा कि ये भी उतने ही अनैतिहासिक हैं, जितना कि शेष हिस्सा। विख्यात अँग्रेज़ी विद्वान जॉन एम. रॉबर्टसन भी इन नौ पैरों को पूर्णतः अनैतिहासिक मानते हैं। पॉल के १३ विवरणों में से एक में भी कुंआरी माँ से ईसा के जन्म का या टेस्टामेंट वर्णित किसी भी चमत्कार का उल्लेख नहीं है। उसमें पर्वत-प्रवचन भी नहीं है। जीसस के नाम से प्रायः प्रचारित कथनों में से एक भी पॉल के इन १३ विवरणों में नहीं है। क्या इसका मतलब यह नहीं कि पॉल के समय तक ये सारे उपदेश, चमत्कार या कथाएँ 'आविष्कृत' ही नहीं थीं। नहीं तो प्रारंभिक ईसाइयत के इस सबसे बड़े लेखक - जिसने किसी भी अन्य बंदे की तुलना में ईसाई धर्म को दुनिया में फैलाने के लिए ज़्यादा काम किया - द्वारा इन सब चीज़ों का उपयोग नहीं किया जाता? पॉल एक मिशनरी था। वह धर्मान्तरण के लिए उत्साही था। क्या वह अपने प्रोपेगेंडा के लिए इन सब चीजों का उपयोग नहीं करता? जर्मनी के इतिहासकार मोशीम लिखते हैं कि "प्रारंभिक ईसाइयत का क्राइस्ट कोई आदमी नहीं था, एक 'प्रतीति' था, एक भ्रम, एक चमत्कारी चरित्र जो यथार्थ में नहीं मिथक में बसता था।" रब्बी हिलेल, एपिक्टेटस, त्याना के अपोलोनियस के जीवन दृष्टान्तों का जीसस के जीवन-दृष्टान्तों से साम्य क्या यह नहीं बताता कि जीसस-कथा पूर्व-प्रचलित कथाओं को थोड़ा फेंटकर बनाई गई? सेरापिस, एस्मन, अपोलो, मित्र, आहुर-मज्दा, जेहावा और आइसिस के पुरोहितों की शिक्षा और वाक्यों को ही बाइबल के जीसस ने प्रतिध्वनित किया। जन्म, मृत्यु, पुनर्जीवन की ऐसी ही कथाएँ ईसा-पूर्व पैगन लोग दुहराते थे। क्यों चार में से एक भी गोस्पेल का ईसा की मृत्यु से सौ साल बाद तक भी कोई उल्लेख नहीं मिलता? इतने चमत्कारी, मानव-सेवी, करुणावान व्यक्ति के बारे में पहली तीन शताब्दियों में सिर्फ़ जोसेफियस द्वारा कथित रूप से प्रयुक्त एक छद्म क्षेपक की पंक्तियां ही मिलती हैं। शेष पंक्तियों के बारे में हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं। इस बुक ऑफ़ रिवेलेशन को यहूदी पुरा-कथाओं की ही रिवर्किंग कहा जा रहा है क्योंकि इसमें मुख्य चरित्र 'लैंब' (मेमना) लगता है, जिसका २८ बार उल्लेख होता है, जीसस का सात बार, क्राइस्ट का चार बार और जीसस क्राइस्ट का दो बार। ये सब तर्क जीसस को एक कल्पना-प्रसूत चरित्र ठहराने के क्रम में पश्चिमी विद्वानों द्वारा ही दिए गए हैं।

विधि की न्यायपीठों में अनुश्रुति पर आधारित सूचनायें

स्वीकार्य नहीं होतीं। वे ही सूचनायें साक्ष्य के रूप में मान्य होती हैं जो गवाह के स्वयं के ज्ञान पर निर्भर हैं। जिम वाकर का कहना है कि जीसस के बारे में सारी सूचनायें गल्पाधृत हैं और किसी को भी टेस्टीमनी की तरह नहीं लिया जा सकता। हम एक ऐसे संसार में रहते हैं जहां लोग दैत्यों, उड़न तश्तरी प्रेतों या पिशाचों पर - असंख्य प्रकार की फंतासियों पर यकीन रखते हैं, गास्पेल तो तृतीय पुरुष में लिखी हुई हैं। ह्यू स्कोनफील्ड का कहना है कि टेस्टामेंट की तीसरी शताब्दी ई. की कोई भी प्रति पाना असंभव है और हम लोग प्रायः चौथी या पांचवी शती की प्रतियां ही देख पाते हैं। रेम्ज़बर्ग का कहना है कि यूसेबिअस, जो चर्च का प्रारंभिक इतिहासकार था और प्रारंभिक चर्च पर जिसका बड़ा प्रभाव था, ने चर्च के हितों के लिये छल और धोखाधड़ी खुलेआम वकालत की थी। उसकी प्रेपरेशो ईवेंजेलिका नामक पुस्तक में एक अध्याय इसी शीर्षक से था "झूठ का औषधि के रूप में उन लोगों के लाभ के लिये प्रयोग जो छले जाना चाहते है, न्यायसंगत और उपयुक्त हो सकता है।" (बारहवीं किताब, अध्याय ३२) ब्रूस मेट्ज़गर ने तो अत्यंत सहानुभूतिपूर्वक और श्रद्धापूर्वक बाइबल को इस झमेले से बाहर निकालने की कोशिश अपनी पुस्तक "दि टेक्स्ट आफ द न्यू टेस्टोमेंटः इट्स ट्रांसमीशन, करप्शन एंड रेस्टोरेशन" में की। उसने "दृष्टिदोष की त्रुटियां, श्रवणदोष की त्रुटियां, मन की त्रुटियां, समझ की त्रुटियां, ऐतिहासिक और भौगोलिक दिक्कतें और धर्मांधता के कारण किये गये बदलाव इन शीर्षकों के अंतर्गत अपना विद्वतापूर्ण अध्ययन किया। १५७८ से ट्यूरिन के केथेड्रल में रखे १४ फीट लंबे कफन को १९८८ के कार्बन डेटिंग परीक्षणों के बाद फोर्जरी माना गया है। ज्यूरिच, आक्सफोर्ड और अरिजोना विश्वविद्यालय की तीनों भिन्न-भिन्न और स्वतंत्र रेडियोकार्बन डेटिंग प्रयोगशालाओं से इस कफन की उम्र १२६०-१३९० ई. की निकल कर आती है। वैसे भी यदि कफ़न सच्चा होता तो किसी गॉस्पेल या परवर्ती ईसाई साहित्य में उसका उल्लेख होना था। नवंबर दिसंबर २००२ में बिब्लिकल आर्केलॉजी रिव्यू पत्रिका ने एक 'वर्ल्ड एक्स्क्लूसिव' लेख प्रकाशित किया जिसमें ईसा के भाई जेम्स के दफ़न-बक्से के बारे में 'महान खोज' थी। परिणाम यह हुआ कि चार सौ बीसी के आरोप में बरिअल बॉक्स डीलर को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। ल्यूक वाले गॉस्पेल में ईसा के जन्म पर तीन घंटे के ग्रहण का उल्लेख है लेकिन किसी समसामयिक ज्योतिषी या खगोलविद् ने विश्व में कहीं भी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं किया, न मैथ्यू वाले गॉस्पेल (२७:५१-५४) के मुताबिक बताये गये जन्म के समय के भूकंप का कहीं कोई समसामयिक उल्लेख है और जैसा कि मैथ्यू बताता है कि प्रभु यीशु की आशंका में तत्कालीन सम्राट हेरोड ने बेथलेहम के सारे बच्चे मरवा दिये थे तो इतने बड़े पैमाने का शिशु-संहार इतिहास में अचर्चित कैसे रह गया जबकि वह दौर बहुत ही प्रबुद्ध इतिहासकारों और लेखकों का दौर था। गॉस्पेल में वर्णित कहानियों पर तर्कवादियों के जो प्रश्न है सो हैं लेकिन उससे ज्यादा उनके लेखकों के भौगोलिक अज्ञान पर आश्चर्य किया जा रहा है। जेरासा नामक जगह गेलिली समुद्र तट से ३१ मील दूर है। जिन सुअरों ने अपने को डुबोया क्या वे मैराथन की दूरी से भी पांच किमी ज्यादा चले होंगे? लेमिंग भी इतनी दूर का सफर नहीं करते और यदि "तीव्र ढ़लान" (steep slope) बात सच मानकर ४५ डिग्री न्यूनतम भी माने तो जेरासा माउंट एवरेस्ट से छः गुना ऊपर होना चाहिए? ऐसी भौगोलिक गलतियों की भरमार है। इसलिए कई पश्चिमी इतिहासकारों ने इतने महान व्यक्ति की ऐतिहासिकता पर भी संदेह किया है।

> *प्रभु यीशु की आशंका में तत्कालीन सम्राट हेरोड ने बेथलेहम के सारे बच्चे मरवा दिये थे तो इतने बड़े पैमाने का शिशु-संहार इतिहास में अचर्चित कैसे रह गया जबकि वह दौर बहुत ही प्रबुद्ध इतिहासकारों और लेखकों का दौर था।*

लेकिन ऐतिहासिकता के इस विवाद में थाती-पुरुषों को डालकर क्या उतनी ही सशक्त अभिप्रेरणाएँ निर्मित की जा सकती हैं कि जो सहस्राब्दियों तक मानव-मात्र को अनुप्राणित रखें?

इतिहास के बारे में अकसर एक द्वन्द्व चलता है जो हिस्ट्री शब्द के ही दो धातुमूलों लैटिन और ग्रीक से पैदा होता है। लैटिन हिस्टोरिया शब्द एक संज्ञा है जिसका अर्थ है कथा, वृत्त। ग्रीक हिस्टोरिया शब्द एक क्रिया है जिसका अर्थ है टु इन्क्वायर, जानना, पता करना। हमारे यहाँ कुछ ऐसे इतिहासकार हैं जिन्होंने इतिहास को कथा की तरह चलाया और कुछ ऐसे हैं जिन्होंने इस जिज्ञासा और गवेषणा की भूमि बनाया। कुछ ऐसे थे कि जिन्होंने इतिहास के बारे में अँग्रेज़ी विजेताओं और शासकों के द्वारा फैलाए गए प्रवादों को ही इतिहास मान लिया और कुछ ऐसे भी जिन्होंने इतिहास की स्वतंत्र गवेषणा और तर्कणा पद्धति विकसित की और कॉलोनियल कथाओं पर निर्भर रहने की जगह इतिहास को जैसा था, वैसा देखा। जिस ग्रीक धातु 'हिस्टोरिया' की मैं बात कर रहा था, उसके हेराक्लितुस ने दो अर्थ किए थे : एक से आशय निकलता था- न्यायाधीश का, जज का और दूसरे से

> इतिहास राख की बाल्टी है। माना। लेकिन विकल्प फिर भी हमारे पास हैं, कि हम इस राख को कीचड़ की तरह मलें, विभूति की तरह धारण करें, या यह देखें कि कैसे इसी राख से हमारी आहत और निस्पन्द सभ्यता और राष्ट्रीय चेतना का फीनिक्स पक्षी पुनर्जीवित हो सकता है।

निकलता था- साक्षी का, विटनेस का। इतिहास को गर्व है कि वह न्यायाधीश है और अंतिम निर्णय उसी का है। इतिहास की विनम्रता है कि हम उस मुहाने और मुक़ाम पर हैं जहाँ वह गवाह है। इतिहास तत्कालीन समय की आज हुई कोई अनुलिपि नहीं है। एड्रियन रिच का आरोप है कि झूठा इतिहास प्रतिदिन बनते चलता है। द ट्रुथ ऑफ द न्यू इज़ नेवर ऑन द न्यूज़।

जुलाई, १९४४ में गांधी जी की मृत्यु के ढाई साल पहले अल्बर्ट आईंस्टीन ने कहा था कि "आने वाली पीढ़ियां मुश्किल से ही विश्वास कर पायेंगी कि ऐसा कोई हाड़ मांस का व्यक्ति वाकई इस धरती पर हुआ था। ""Generations to come will scarcely believe that such a one as this ever in flesh and blood walked upon this earth" बीसवीं सदी के इस सबसे बड़े वैज्ञानिक ने बीसवीं सदी के इस महानतम् व्यक्तित्व के बारे में किसी श्रद्धा के कारण ऐसा नहीं कह दिया होगा। यह वैज्ञानिक लोगों की शार्ट मेमोरी, उनके स्मृति-भ्रंश, स्मृति-लोप से काफी हद तक परिचित था। वह उतना ही गांधी जी के साथ घट रही उस दैव्यीकरण (divinization) की प्रक्रिया से भी परिचित था जिसके चलते सामूहिक श्रद्धाएं आदमी को देवता बनाती हैं, मनुष्य को मिथ बनाती हैं और फिर बाद में ऐसी कुघड़ी आती है कि इतिहासकार उसे मिथक कहकर ठुकरा देते हैं। यह हम पहले घटता देख चुके हैं, किसी और संदर्भ में। आश्चर्य नहीं कि गांधी के साथ भी एक दिन यही सब घटे। मिल, मैकाले और मार्क्स के चलते हमारे पुरातन महापुरुषों का इतिहास से किंवदंती में निर्वासन हुआ था। कोई आश्चर्य नहीं कि नव आर्थिक उपनिवेशवाद की जरूरतों के चलते उस गांधी का भी यही हश्र हो जिसका सादा, अपरिग्रही जीवन, जिसका स्वायत्त ग्राम गणतंत्र का आदर्श आज के आक्रामक ग्लोबल उपभोक्तावाद के सामने एक वैचारिक चुनौती की तरह खड़ा है। उस देश में यह करना शायद और सरल हो जहां हमें वैसे ही अपने स्मारकों पर थूकने की, उनकी दीवारों और खंभों पर अपना नाम, तरह तरह की वल्गर ड्राइंग्स के साथ उकेरने की आदत पड़ गई है। जिस हद तक हम किसी मनुष्य को अवतार बनाते हैं, उस हद तक आम आदमी का मनोविज्ञान अपने बदले भी चुकाता है, एक साइलेंट रिवेंज जब आदमी का आदर्शीकरण (idealization) उसके मूर्तिकरण (idolization) में बदलता जाता है, जब हम प्रतिभा को प्रतिमा में बदल देते हैं, फिर पूजा पाठ करके- माला वाला चढ़ाके छोड़ छुट्टी करते हैं और जब यह क्रम कई शताब्दियों तक चल जायेगा तो एक दिन आसानी से कह सकेंगे कि गांधी आस्था का विषय है, गांधी पर बहस नहीं हो सकती। गांधी गांधी है। कि फिर रामसरन शर्मा जैसा कोई इतिहासकार खड़ा हो जायेगा और कहेगा कि यह श्रद्धा और शोध का शाश्वत संघर्ष है। महापुरुष को मिथक बनाकर रिजेक्ट करने के पहले हम अपने बौद्धिक आलस्य को पहचानें कि एक ओर जहां पश्चिम में मिथक का इतिहास ढूंढ़ने की मेहनत चल रही है, कि जहां हेनरिक स्केलिमैन जैसे व्यापारी, बिज़नेसमैन हो रहे हैं जिन्हें बचपन से होमर के महाकाव्य इलियड की 'रियलिटी' में भरोसा रहा और जिसने अन्ततः ट्रॉय के अस्तित्व के पुरातात्विक प्रमाण ढूंढ़ निकाले, जिन्होंने उन इतिहासकारों को expose कर दिया जो क्रिश्चियनिटी में कन्वर्ट होने के पहले के ग्रीको-रोमन इतिहास को कवि-कल्पना और मिथक बताते नहीं थकते थे।

आईंस्टीन ने महापुरुषों के साथ घटने वाली इस विडंबना, इस त्रासदी के चलते इस खतरे को पहचान लिया था।

लोग कहते हैं कि इतिहास राख की बाल्टी है। माना। लेकिन विकल्प फिर भी हमारे पास हैं, कि हम इस राख को कीचड़ की तरह मलें, विभूति की तरह धारण करें, या यह देखें कि कैसे इसी राख से हमारी आहत और निस्पन्द सभ्यता और राष्ट्रीय चेतना का फीनिक्स पक्षी पुनर्जीवित हो सकता है। महापुरुष को मिथक बनाकर रिजेक्ट करने के पहले हम अपने बौद्धिक आलस्य को पहचानें कि एक ओर जहाँ पश्चिम में मिथक का इतिहास ढूंढ़ने की मेहनत चल रही है, कि जहाँ हेनरिक स्केलिमैन जैसे व्यापारी (बिज़नेसमैन) हो रहे हैं जिन्हें बचपन से होमर के महाकाव्य इलियड की 'रियलिटी' में भरोसा रहा और जिसने अन्ततः ट्रॉय के अस्तित्व के पुरातात्विक प्रमाण ढूंढ़ निकाले, जिन्होंने उन इतिहासकारों का पर्दाफाश कर दिया जो क्रिश्चियनिटी में कन्वर्ट होने के पहले के ग्रीको-रोमन इतिहास को कवि-कल्पना और मिथक बताते नहीं थकते थे- वहाँ दूसरी ओर हमारे यहाँ ऐसे इतिहासकार हैं जो मूलतः फतवा जारी करने वाले इतिहासकार हैं। वैज्ञानिक साधनों और प्रविधिकी का ऐतिहासिक जिज्ञासाओं की सम्पूर्ति में इस्तेमाल करने वाले नहीं हैं।■

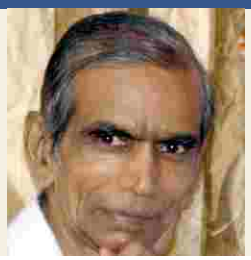

बृजेन्द्र श्रीवास्तव

लेखक-समीक्षक, साहित्य एवं कला, विज्ञान एवं अध्यात्म, ज्योतिष एवं वास्तु, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान जैसे विविध विषयों पर निरंतर लेखन. ५० से अधिक शोध-पत्र विश्वविद्यालयों व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत. जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर में ज्योतिर्विज्ञान अध्ययनशाला के अतिथि अध्यापक.

सम्पर्क : अपरा ज्योतिषम, २६९, जीवाजी नगर, ठाठीपुर, ग्वालियर-४७४०११

ईमेल - brijshrivastava@rediffmail.com मोबाइल - ९४२५३६०२४३

चिन्तन

आसक्ति

चक्रवर्ती राजा भरत ने राज्य और परिवार छोड़ कर जंगल के राह ली और कठिन तपस्या करके चित्त शुद्ध कर लिया। एक दिन उन्होंने हिरन के एक नवजात बच्चे को जल में बहता देखकर उसे बचाया और उसे स्नेह से पालने पोसने लगे। धीरे-धीरे विरक्त भरत का मन उस मृगछौने में इतना आसक्त हो गया कि वे हर पल उसी की चिन्ता में रहने लगे। श्रीमद्भागवत में भरत के इस लगाव को दो स्थानों पर 'आसक्ति' ही कहा है; इस आसक्ति के कारण मरते समय भी भरत को मृगशावक का ध्यान रहा और महाज्ञानी होने पर भी उन्हें 'अन्त मति - सो गति' के नियम से अगले जन्म में हिरन रूप में जन्म लेना पड़ा।

क्या है यह आसक्ति? आसक्ति चित्त की कई वृत्तियों में से एक है। जब मनुष्य के मन का लगाव किसी वस्तु में, शौक में, भाव विशेष में या वासना में अथवा व्यक्ति या जीव में इतना अधिक बढ़ जाता है कि उसके बिना मन को संतुष्टि ही नहीं मिले, लगभग हर समय उसी का ध्यान बना रहे, तब मन की इस तरह के निरंतर झुकाव की स्थिति को आसक्ति कहा जाता है।

आसक्ति इस प्रकार, विरक्ति के ठीक विपरीत है जिसमें मन, संसार के कार्य और वस्तुओं से हट कर अंतर्मुखी हो जाता है, अपनी आत्मा में ही रम कर परम-आत्म तत्व में लीन होने लगता है। आसक्ति और विरक्ति इस प्रकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं आसक्ति बाहरी दुनिया के तरफ झुकी मनो-वृत्ति है जबकि विरक्ति, अंतर-आत्मा की तरफ बढ़ी हुई मनो-वृत्ति है।

> *आसक्ति और विरक्ति इस प्रकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं आसक्ति बाहरी दुनिया के तरफ झुकी मनो-वृत्ति है जबकि विरक्ति, अंतर-आत्मा की तरफ बढ़ी हुई मनो-वृत्ति है।*

आसक्ति का रोचक उदाहरण मुंशी प्रेमचंद की कहानी शतरंज के खिलाड़ी में मिलता है जिसमे फिरंगी अंग्रेजों की फौजों के महल में घुस आने पर भी कहानी का नायक शतरंज की शह और मात की चाल में ही आसक्त बना रहता है। खेल की ही बात करें तो कभी-कभी कोई खेल देशवासियों के अत्यधिक लगाव के कारण देश का शौक या पास्टाइम बन जाता है जैस संयुक्त राज्य में बेसबाल और बास्केटबाल, यूरोप और अर्जेन्टीना आदि में फुटबाल। भारत में हॉकी के खेल पर देश की दो-तीन पीढ़ियाँ आसक्त रहीं। क्या अब क्रिकेट भारत के जन-गण के मन की आसक्ति है? फिलहाल उपभोक्ता संस्कृति के चलते, जिसमें खिलाड़ी ही सरे आम नीलाम होते हों ऐसी क्रिकेट यहाँ फैशन तो बन सकती है, पर हॉकी जैसी आसक्ति का रूप नहीं ले सकती।

कई बार व्यक्ति को अपनी आदत के अतिरेक का अर्थात आसक्ति का ज्ञान तो अच्छी तरह से रहता है पर फिर भी वह उस आसक्ति से उबरना नहीं चाहता। मिर्ज़ा ग़ालिब की जगजाहिर आसक्ति शायरी और शराब में थी। शराब में अपनी आसक्ति की निन्दा वह खुद कुछ इस तरह से करते हैं :

प्रत्याहार के बाद धारणा ध्यान व समाधि, चित्त वृत्ति के रूपांतरण की अगली क्रमिक सीढ़ियां होती हैं जिसमें चित्त वृत्ति को किसी एक विचार, मन्त्र भाव दृश्य आदि पर एकाग्रता का अभ्यास कराया जाता है।

ये मसाइले तसव्वुफ, ये तेरा बयान ग़ालिब!
हम तुझे वाली समझते जो न बादा ख्वार होता।

ग़ालिब! तेरे बयान में, शायरी में ऊंची किस्म की आध्यत्मिक समस्याओं (मसाइले तसव्वुफ) पर चर्चा रहती है। यदि तुम शराबी (बादा ख्वार) न होते तो हम तुम्हें सिद्ध-महात्मा (वली) समझते।

वस्तुतः मन की गति जल की तरह होती है। जैसे जल, ढाल या नीचे की तरफ ही सहज रूप से जाता है, वैसे ही मन, व्यसनों व सांसारिक वस्तुओं आदि में आसानी से रमता जाता है सत्व गुण से रज गुण नीचा है और रज से तम गुण नीचा है। इसलिए मन आसानी से सत्व गुण की वस्तु से रजगुण के तरफ और रजोगुण से तमोगुण की वस्तु या वातावरण की तरफ लुढकने लगता है और वैसे ही रंग में रंग जाता है या कहिए कि आसक्त हो जाता है। किसी अहितकर वस्तु के सेवन में आसक्ति को व्यसन भी कहा जाता है। व्यसन या बुरी आदत के प्रति मन का सहज झुकाव देख कर ही कहा गया है कि यदि व्यसन ही करना है तो विद्या व्यसन की श्रेष्ठ है जिससे कि ज्ञान चर्चा मनन चिन्तन लेखन में ही मन लीन रहे। साहित्यकार, विचारक, कलाकार, अन्वेषक एक तरह से अपनी-अपनी ज्ञान शाखा का व्यसनी ही होता है। व्यसन के इस उदात्तीकरण sublimation के कारण ही वह समाज को बहुत कुछ दे पाता है।

आसक्ति को बुरा सब मानते हैं पर सभी में थोड़ी बहुत आसक्ति पाई जाती है। आखिर है तो मन की एक वृत्ति या मन का विशेष झुकाव ही। इसलिए इससे बचा नहीं जा सकता। व्यावहारिक बात तो यह भी है कि यदि मन में आसक्ति नहीं हो, मन एकदम निर्लिप्त हो तो संसार का चक्र चल ही नहीं सकता। क्योंकि आसक्ति जहाँ सांसारिकता में मन को लिप्त करती है वहीं इसकी विपरीत मनःस्थिति वाली विरक्ति, मन को दुनियादारी से हटा कर अन्तर-मुखी बनाती है। सत्ययुग में सृष्टि का विस्तार ही नहीं हो सका था क्योंकि प्राणी इच्छा रहित जो थे, संसार में अनुरक्त ही नहीं थे। तब मनु की दुलारी कन्या देवहूति और ऋषि कर्दम की परस्पर अनुरक्ति और विहार के उपरान्त ही पृथ्वी पर सृष्टि का क्रम आगे बढ़ पाया था। ऐसा माना जाता है कि ऊंचे किस्म के महात्मा परमहंस या अवधूत, परोपकार की दृष्टि से अपना शरीर इस लोक में बनाए रखने के लिए भोजन आदि किसी सांसारिक वस्तु में अपनी आसक्ति बनाए रखते हैं।

आसक्ति का रूप शुरू में बहुत छोटा होता है। इच्छा से इसकी शुरूआत मान सकते है, इच्छा से तीव्र इच्छा, इस तीव्र इच्छा का फैलाव और निरंतरता ही आसक्ति का रूप ले लेती है। वस्तुतः आसक्ति में इच्छा की अधिकता, अतिरेक excessiveness और व्यसन की दूषित प्रकृति ये दो बातें ही खराब या नकारात्मक हैं। इसलिए सुखी जीवन जीने के लिए बीच का मार्ग 'न अधिक न कम' का रास्ता ही श्रेष्ठ होता है जिसे सम्यक भोग मार्ग भी कहा जाता है। ऐसा मध्यम मार्ग व्यक्ति और परिवार के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच समय-संतुलन भी बनाए रखता है और व्यक्ति के निजी शौक के प्रति लगाव भी इसमें पूरे होते रहते हैं।

क्लब, मद्यपान, जुआ, शेयर-सट्टा, नशीली दवा ड्रग सेवन के पुराने व्यसन हों या नए चलन के लिव-इन्-रिलेशन का शौक हो जिसे बिना विवाह के दोस्ती भी कहते है, सोशल-नेटवर्किंग हो या कान में ढक्कन लगा कर सोते जागते हो-हल्ला सुनने का व्यसन, ये सब अपनी सीमा पार करने पर, अतिरेक या आसक्ति की स्थिति में पहुँचने के बाद ही हानि दायक होने लगते हैं।

मन के इस तीव्र एवं निरंतर झुकाव को जिसे आसक्ति की वृत्ति कहा जाता है, समाप्त नहीं किया जा सकता। यही क्यों, मन की किसी भी वृत्ति को नष्ट नहीं किया जा सकता। योग दर्शन में योग को इसी चित्त या मन की वृत्ति के निरोध का विज्ञान माना है : योगश्च चित्त वृत्ति निरोधः; योग की इस प्रक्रिया में यम नियम आसान प्राणायाम के बाहरी उपाय के बाद प्रत्याहार पहला आन्तरिक उपाय होता है जिसमें चित्त को बाहरी दुनिया से मोड़कर अंदर के आध्यत्मिक विश्व की तरफ लाया जाता है। प्रत्याहार के बाद धारणा ध्यान व समाधि, चित्त वृत्ति के रूपांतरण की अगली क्रमिक सीढ़ियां होती हैं जिसमें चित्त वृत्ति को किसी एक विचार, मन्त्र भाव दृश्य आदि पर एकाग्रता का अभ्यास कराया जाता है। इस प्रकार योग इधर-उधर बिखरी हुई सभी मनोवृत्तियों का एकीकरण और रूपांतरण दोनों एक साथ करता है।

तुलसी की रत्नावली के प्रति आसक्ति को रत्नावली ने, वाल्मीकि की हिंसा-आसक्ति को नारद ने रूपान्तरित कर दिया था, जबकि बुद्ध ने अंगुलिमाल दस्यु का और सत्तर के दशक में जयप्रकाश नारायण ने चम्बल के दस्यु दलों की हिंसा

के प्रति आसक्ति का रूपान्तरित कर उन्हें जीने की नयी राह दिखाई थी।

आसक्ति में एक तरफा तीव्र ऊर्जा प्रवाह होता है चित्त की एकाग्रता होती है, इसलिए यदि दिशा सही हो तो इसी आसक्ति से कई अच्छे रचनात्मक कार्य भी हो सकते हैं और होते भी हैं। वैज्ञानिक अपने विषय के प्रति तीव्र आसक्ति या लगाव के कारण ही दिन-रात अपने अनुसंधान में लगे रहते हैं, अपने सभी कष्टों को और सांसारिक दायित्वों को भूले रहते हैं और तभी वे कोई सिद्धांत या आविष्कार दुनिया को दे पाते हैं।

कार्य के प्रति वैज्ञानिक जैसी तीव्र आसक्ति व तन्मयता का भारतीय उदाहरण है ब्रह्मसूत्र के टीकाकार वाचस्पति मिश्र का। पर अफसोस! धर्म निरपेक्षिता के आहत होने के भ्रम से या अंग्रेजी मानसिकता के कारण इसे किसी पाठ्य पुस्तक में पढ़ाया नहीं जा सकता। वाचस्पति मिश्र ब्रह्मसूत्र की - जो कि वेदों और उपनिषदों का सार है- व्याख्यात्मक टीका लिखने में इतने आसक्त रहते थे कि उन्हें वर्षों तक यह भी याद नहीं आया कि उनका विवाह भी हुआ है। जब टीका समाप्ति की ओर थी तब अचानक अपनी पत्नी भामति की ओर उनका ध्यान गया। तब उन्होंने गृहस्थ धर्म का निर्वाह नहीं कर पाने के प्रायश्चित रूप में ब्रह्मसूत्र पर अपनी टीका का नाम ही 'भामति नाम टीका' रख दिया क्योंकि टीका संपन्न होते ही संन्यास लेने का संकल्प वह पहिले ही कर चुके थे।

आसक्ति, इस प्रकार, यदि सात्विक उच्च बौद्धिक परोपकारी है तो वह वरेण्य है, समाज के लिए कल्याणप्रद है, स्वयं के लिए असीम आत्म संतोष दायक भी। भक्ति के मामले में कहा गया है कि मोह व आसक्ति यदि सांसारिक चीजों में है तो वह त्याज्य है पर यदि यह आसक्ति भक्ति में सहायक है तो श्रेष्ठ है। नारद ने अपने भक्ति सूत्र में आसक्ति के इस गुण को स्वीकार करते हुए प्रेमरूपा भक्ति को, एक होते हुए भी, आसक्तियों के भेद से ही ग्यारह प्रकार का बताया है: पूजाआसक्ति, गुणमाहात्म्य आसक्ति, रूपासक्ति स्मरणासक्ति, दास्य, सख्य, कांता, वात्सल्य, आत्मनिवेदन, तन्मय, और परमविरहआसक्ति।

आसक्ति के सम्बन्ध में एक बात और है, आसक्ति जितनी तीव्र होती है उसके अच्छे काम में बदल जाने की संभावना भी उतनी ही अधिक बनी रहती है, बस अनुकूल परिस्थिति की दरकार होती है। ऐसी रूपान्तरित आसक्ति का प्रभाव भी उतना ही गहरा और व्यापक होता है। अक्सर देखते हैं कि हमारी आसक्तियों में भी उतनी तीव्रता नहीं होती तथा शिथिलता और संशय इसके साथ बने रहते हैं। इसलिए ऐसी आसक्ति न तो लोकउपकारी कार्य का रूप ले पाती है और न ही हम ऐसी आसक्ति से बाहर ही निकल पाते हैं।

"आसक्ति जितनी तीव्र होती है उसके अच्छे काम में बदल जाने की संभावना भी उतनी ही अधिक बनी रहती है, बस अनुकूल परिस्थिति की दरकार होती है। ऐसी रूपान्तरित आसक्ति का प्रभाव भी उतना ही गहरा और व्यापक होता है।"

आइये हम न्यूटन के गति के तीसरे नियम Newton's 3rh law of motion को तनिक आसक्ति की तीव्रता पर लागू कर के देखें कि हर क्रिया की प्रतिक्रिया ठीक बराबर किन्तु विपरीत दिशा में होती है अर्थात जितनी तीव्रता या शक्ति से हम आसक्ति की गेंद को नीचे जमीन की ओर फेंकेंगे, उतनी ही तीव्रता या शक्ति से गेंद विपरीत दिशा में ऊपर आकाश की ओर जाएगी। यहाँ तीव्रता ही जो कि शक्ति का पर्याय है निर्णायक है। इसलिए आसक्ति के सकारात्मक रूपान्तरण के लिए उसमें उद्दाम वेग आवश्यक है। देव और दानव दोनों को तप करने की स्वतन्त्रता थी। दानव अपने तप की इस तीव्रता के बल पर सदैव देवताओं से अधिक शक्ति प्राप्त करते रहे जबकि देवता इस मामले में छल, कपट या शरणागति के पिछलग्गू बने रहे।

आज हम जो खूबसूरत सैलफोन, आईपैड आदि देखते हैं उसके पीछे स्टीव जोब्स की, अपने कार्य के प्रति तीव्र आसक्ति और समर्पण ही मुख्य है। वह उपकरणों को सुन्दर भी बनाना चाहते थे जिसमें वह कई बार असफल हुए और कैंसर रोग ग्रस्त भी रहे। आईटी में अपनी तीव्र आसक्ति से प्राप्त ऊर्जा के बल पर, असफल और रोगग्रस्त स्टीव जोब्स ने एक अनोखा काम कर दिखाया। कहा गया कि स्टीव जोब्स, अनाकर्षक डिजाइन के इलैट्रानिक उपकरणों का 'विवाह' सौन्दर्यबोध वाली नई नवेली टैक्नोलोजी से कराने में सफल रहे।

परस्पर व्यवहार में हम, खासकर युवा पीढ़ी कोमलता को भुलाकर, चाय काफी संगीत से लेकर हर चीज स्ट्रॉंग रफ-टफ और कड़क चाहने लगी है, यहाँ तक कि भीड़ में कंधे का सामान्य स्पर्श भी सहनशीलता के बाहर होता जा रहा है। जबकि स्टीव जोब्स ने संवेदनाओं को फिर से जीवित करते हुए उपकरणों में प्रयुक्त push 'दबाईये' की कठोरता को touch 'स्पर्श कीजिए' की कोमलता में बदल दिया जो कई लिहाज से गौर तलब है।

तो आइये! क्यों न हम भी किसी शौक को, आदत या जुनून को अच्छा, आत्म-संतोषी और जन हितकारी मिशन का रूप दें और पूरी आसक्ति से उस में जुट जाएँ ताकि आने वाले वक्त में दुनिया हमें भी सलाम करे, हमारा नमन करे।■

डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता
गणित एवं औद्योगिक इंजीनियरिंग में डिग्रियां. तीस वर्षों से मैनेजमेंट के प्रोफेसर. फिलहाल युनिवर्सिटी ऑफ ह्यूस्टन-डाउनटाउन में सेवारत. पचास से अधिक शोध-पत्र विश्व के नामी जर्नल्स में प्रकाशित. दो मैनेजमेंट जर्नल के मुख्य संपादक एवं कई अन्य जर्नल्स के संपादक. हिंदी पढ़ने-लिखने में रुचि. काव्य-लेखन, विशेषकर सामयिक एवं धार्मिक काव्य लेखन में.
सम्पर्क : om@ramacharit.org

कौन बनेगा रामभक्त

निम्न प्रश्नों के उत्तर तुलसीकृत श्री रामचरितमानस के आधार पर दीजिये.
सही उत्तर अगले अंक में प्रकाशित होंगे.

१. अत्री ऋषि ने किस काण्ड में रामजी की स्तुति की है ?
   अ) बालकाण्ड
   ब) अरण्यकाण्ड
   स) लंकाकाण्ड
   द) उत्तरकाण्ड

२. सीताजी ने अपहरण के समय आकाश से पृथ्वी पर क्या गिराया ?
   अ) वस्त्र
   ब) गहनें
   स) चप्पलें
   द) बाल

३. हनुमान को लंका किसने भेजा ?
   अ) सुग्रीव
   ब) जामवंत
   स) राम
   द) लक्ष्मण

४. किस पर्वत ने हनुमान को लंका जाते समय विश्राम लेने को कहा ?
   अ) विन्ध्याचल
   ब) मैनाक
   स) त्रिकूट
   द) नीलगिरी

५. सीताजी ने हनुमान को क्या दिया ?
   अ) अंगूठी
   ब) चूड़ामणि
   स) गले का हार
   द) रामायण की एक प्रति

६. सम्पाती जटायु के क्या लगते थे ?
   अ) भाई
   ब) पिता
   स) चाचा
   द) मित्र

७. सीताजी ने त्रिजटा को किस वस्तु की व्यवस्था करने को प्रार्थना की ?
   अ) पानी
   ब) आग
   स) भोजन
   द) रथ

८. सीता की माता का क्या नाम था ?
   अ) अनूसुया
   ब) सुनयना
   स) तारा
   द) अहिल्या

९. तारकासुर को किसने मारा ?
   अ) गणेश
   ब) कार्तिकेय
   स) लक्ष्मण
   द) शत्रुघ्न

१०. रामजी ने अपने विशाल ब्रह्मांडयुक्त स्वरूप का दर्शन किस को दिया ?
   अ) कौशल्या
   ब) दसरथ
   स) हनुमान
   द) सीता।

प्रश्नों के उत्तर तुरंत जानने के लिए kbr@ramacharit.org पर आग्रह किया जा सकता है.

फरवरी २०१३ अंक में प्रकाशित प्रश्नों के सही उत्तर हैं :

१. ब, २. स, ३. द, ४. स, ५. ब, ६. स, ७. स, ८. अ, ९. स, १०. ब

भूपेन्द्र कुमार दवे

जन्म : २१ जुलाई १९४१. शिक्षा : बी.ई. आनर्स, एफ.आई.ई., कहानी और कविताओं का आकाशवाणी से प्रसारण. प्रकाशित कृतियाँ : ३ खंड काव्य, १ उपन्यास, ५ काव्य संग्रह, २ ग़ज़ल संग्रह, ७ कहानी संग्रह एवं २ लघुकथा संग्रह. मध्यप्रदेश विद्युत मंडल द्वारा कथा सम्मान. त्रिवेणी परिषद द्वारा उषा देवी मित्रा अलंकरण प्राप्त. संप्रति : भूतपूर्व कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश विद्युत मंडल.

सम्पर्क : b_k_dave@rediffmail.com

मंथन

अन्तरात्मा की भव्यता

THE GRANDEUR OF INNER SELF

भगवत्गीता में अर्जुन व श्रीकृष्ण के बीच हुए संवाद में सूक्ष्म दार्शनिक सत्य प्रगट होता है। योगवशिष्ठ में श्रीराम व गुरु वशिष्ठ का संवाद सरल वाक्य-विन्यास लिया है। वहीं अष्टावक्र गीता में राजा जनक व गुरु अष्टावक्र का वार्तालाप सूक्ष्म सत्य पर चिंतन स्वरूप है। ये कृतियाँ चिंतन को उस उच्च स्तर तक ले जाती हैं जहाँ सिद्धि ब्रह्म याने चेतना से परिचय कराती है। भगवत्गीता में अर्जुन युवावस्था का, योगवशिष्ठ में श्रीराम बाल्यावस्था का और अष्टावक्र गीता में राजा जनक प्रौढ़ावस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। फलतः ये कृतियाँ जीवन की हर अवस्था को आत्मसात् करती हुई एक समान सिद्धि तक ले जाती हैं, ताकि मात्र सत् ही प्रकट होकर और असत् अलग से चिन्हित होकर शुद्ध चेतना से हमारे जीवन को देदीप्यमान कर सके। आज हम अपनी प्रत्येक अवस्था में चिंतन द्वारा सत्य की खोज या शान्ति की प्राप्ति या फिर माया व भ्रम की गहरी परतों का उन्मूलन करने का प्रयास करते हैं। यह चिंतन भी एक स्वतंत्र व स्पष्ट संवाद बन जाता है जहाँ हमारा भ्रमित किन्तु विचारशील मन शून्य का प्रतीक बना हमारी अंतरात्मा याने अनंत चेतना से प्रश्न कर संवाद का आरंभ करता है। देखने, समझने व सोचने में सक्षम हमारा शरीर अपने मन के सारे विचारों के मलबे को चिंतन की प्याली में ऊँड़ेलता है और अपने अंतः से हुए संवाद की ऊष्मा में मथ जाने का इंतजार करता है। मैंने प्रयास किया है कि यह संवाद मेरे प्रबुद्ध पाठकों तक पहुँचे ताकि हर मानवमन शुद्ध चेतना की सिद्धि की ओर अग्रसर होने में अपनी सक्षमता का आभास कर सके। - **ले.**

PART 2

Mind speaks

Where was I? Where am I? Where will I be? Answer to these three questions will guide me to know what I was, what I am and what I will be.

मन ने कहा

मैं क्या था ? मैं क्या हूँ ? मैं क्या बनूँगा ? इन तीन प्रश्नों के उत्तर मुझे यह बताने में सहायक होंगे कि मैं क्या था, मैं क्या हूँ और मैं क्या रहूँगा।

For in this vast universe I am a small speck of cloud wandering aimlessly --- at times spattering and then gathering myself.

क्योंकि इस विशाल ब्रह्माण्ड में लक्ष्यहीन एक छोटे-से बादल के टुकड़े की तरह मैं भ्रमण कर रहा हूँ — कभी खुद को बिखराता तो कभी खुद को समेटता।

O my inner self! Due to ignorance and being caught in the web of Maya, I am full of doubts and illusions and therefore desire to know answer to this question, for you alone are mine and you alone stand so close to me. Please help me to remove the layers of ignorance.

हे मेरी अन्तरात्मा, स्वतः की अज्ञानता के कारण और माया जाल में उलझे रहने की वजह से मैं अनेक शंका व भ्रमों से घिरा हुआ हूँ और इसलिये इन प्रश्नों का उत्तर चाहता हूँ क्योंकि तुम ही मेरे अपने हो और मेरे इतने करीब हो। कृपया मेरी अज्ञानता की परतों को दूर करने में सहायता करो।

The inner self answers

Like me you are where you were and will be there only; for real is always firm and constant. I was in consciousness; I am still there and have to merge with the same consciousness.

अन्तरात्मा ने उत्तर दिया -

मेरी तरह तुम जहाँ थे वहीं हो और वहीं रहोगे क्योंकि सत सदा अडिग और अचल होता है। मैं ब्रह्म में था, ब्रह्म में ही हूँ और मुझे उसी ब्रह्म में विलीन होना है।

Hence the universe where you feel you are appears to you as real. Yet it is really unreal for though it is created for you, it will cease to be for you when you leave this body.

फलतः यह ब्रह्माण्ड जहाँ तुम सोचते हो कि तुम हो वह तुम्हें सत प्रतीत होता है। फिर भी वास्तव में वह असत है क्योंकि उसका अस्तित्व यद्यपि तुम्हारे लिये बना है फिर भी तुम्हारे लिये बचा ही नहीं रहेगा जिस दिन तुम इस शरीर का त्याग करोगे।

For death is also unreal as the life is. These are only the journey of the consciousness from the realm of real to unreal and back.

क्योंकि मृत्यु जीवन की तरह ही असत्य है। ये तो सचेतना (ब्रह्म) की सत्य के साम्राज्य से असत्य और वापस होने की यात्रा मात्र है।

So let not the enthusiasm that springs at the start of the journey die during the journey and at the culmination of the same.

अतः वह उत्साह जो यात्रा के प्रारंभ में पनपा था उसे यात्रा के दौरान तथा उसके खत्म होने तक मरने मत दो।

Rejoice at the onset of the journey, enjoy the journey and be happy on your journey back to home. You are actually on a holiday trip.

यात्रा के आरंभ होते वक्त खुश हो, यात्रा का आनंद लो और घर वापसी की इस यात्रा के समय प्रसन्न रहो। तुम वास्तव में छुट्टी के दिनों के भ्रमण में होते हो।

For in this journey you have to explore the unreal and experiment with all that which was not with you when you were merged in the real.

क्योंकि इस यात्रा में तुम्हें असत्य को खोजना है और उन सब चीजों से अनुभव पाना है जो तुम्हारे पास नहीं थीं जब तुम सत्य से जुड़े थे।

Yet know that this journey is different from the one, which the body performs on land, sea and air. The body takes only the bare necessities during the journey leaving all other things safe at home.

फिर भी ध्यान रहे कि यह यात्रा उस यात्रा से भिन्न है जो तुम्हारा शरीर जमीन, समुद्र व हवा में करता है। शरीर कम से कम आवश्यक चीजें लेकर और बाकी सब घर में सुरक्षित रखकर यात्रा में निकलता है।

Here you proceed with nothing but the self and fascinated by the glamour of the unreal you collect even that which is of no use to you.

यहाँ तुम सिर्फ अंतरात्मा को लेकर निकलते हो और असत्य के जादू में पड़कर उन चीजों को भी बटोरते हो जो तुम्हारे कुछ भी काम की नहीं है।

In fact the journey in realm of unreal makes you unreal, for as you think so you become. You have correctly said that you wander as cloud.

वास्तव में असत्य के संसार की यात्रा तुम्हें असत्य बना देती है क्योंकि जो कुछ तुम सोचते हो वही बन जाते हो। तुमने ठीक ही कहा कि तुम बादलों की तरह भटकते हो।

But remember that the clouds too originate from the ocean and return back to it and during the journey they rain --- turning buckets of ocean onto the most needed land.

परन्तु याद रखो कि बादल सागर से बनकर आते हैं और उसी में वापस लौट जाते हैं तथा इस यात्रा के दौरान वे बरसते हैं — जरूरतमंद जमीन पर सागर की बाल्टियाँ ऊँड़ेलते हुए।

The karma that the clouds perform is an act of giving. They give, whatsoever they have, to the needed dry land and glide happily across the sky like the consciousness drifting peacefully in the realm of reality as well as unreality.

कर्म जो बादल करते हैं वह देने का है। उनके पास जो कुछ होता है उसे वे सूखी जमीन को दे जाते हैं और शान्ति से आकाश में चल पड़ते हैं जैसे सचेतना (ब्रह्म) शान्तिपूर्वक सत एवं असत के साम्राज्य में चलती है।

This karma is of giving a kind of renunciation. Since we know not when this journey will end, the entire journey means immediate giving of all gains so that we suffer no worry or pains while preparing for our return journey.

यह कर्म देने का याने त्यागने का है। चूँकि हमें नहीं मालूम कि हमारी यात्रा कब खत्म होगी, इसलिये संपूर्ण यात्रा का अर्थ पाकर तुरंत त्यागने का है ताकि लौटने की तैयारी के लिये हमें चिंतित व पीड़ित न होना पड़े।

For it is the karma that sprouts the feeling of reality in the realm of fleeting unreality and helps vanishing of the unreality to a greater extent.

क्योंकि यह कर्म है जो भागते असत के संसार में सत की अनुभूति कराता है और काफी हद तक असत को हटाने में मदद करता है।

क्रमशः

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

पंचतंत्र

धनचक्कर की कथा

किसी नगर में चार ब्राह्मणपुत्र रहते थे। उनमें बहुत पटती थी। वे सभी गरीबी के मारे हुए थे। एक बार वे आपस में विचार कर रहे थे। उनमें से एक ने कहा, "मित्रों, यह दरिद्रता बड़ी बुरी चीज है। गरीब रहने से तो अच्छा है कि मनुष्य हाथी, बाघ आदि हिंसक पशुओं से भरे, निर्जन तथा कुश-कांटों से घिरे जंगल में जाकर बस जाए, वल्कल पहन कर लाज ढंके, तिनके बिछाकर सोए, पर अपनी बिरादरी में गरीब बनकर जिंदा न रहे।"

एक दूसरे ने भी उसकी बात पर हामी भरी। बोला, "हां यार, गरीब आदमी किसी की कितनी भी जी लगा कर सेवा करे, उसका मालिक कुढ़ता ही रहता है। रिश्तेदार उसे फूटी आंखों भी नहीं देखते। वह दूसरों की भलाई करने चले तो भी लोग हंसते हैं। गरीब होने पर उसके अपने बेटे-पोते तक उसे छोड़ देते हैं। आफतों का तो तांता लग जाता है। अपनी घरवाली, यदि अच्छे खानदान से आई हो तो भी, अपने काबू में नहीं रहती। और तो और अपने पुराने संगी-साथी भी कन्नी काटने लगते हैं।

> *गरीब आदमी किसी की कितनी भी जी लगा कर सेवा करे, उसका मालिक कुढ़ता ही रहता है। रिश्तेदार उसे फूटी आंखों भी नहीं देखते। वह दूसरों की भलाई करने चले तो भी लोग हंसते हैं। गरीब होने पर उसके अपने बेटे-पोते तक उसे छोड़ देते हैं।*

तीसरे ने कहा, "बात तो तुम दोनों ठीक ही कहते हो। चाहे आदमी बहादुर हो या सुंदर और सजीला, वह बातूनी हो या शस्त्रों-शास्त्रों का जानकार। यह दुनिया ऐसी है कि इसमें पैसा न हो तो न तो नाम हो पाता है, न मान मिल पाता है।"

अब चौथा क्यों चुप रहता। उसने भी कहा, "बात तो पते की है। देखो न, शरीर वही रहता है, सारी इंद्रिया वे ही रहती हैं। नाम वही रहता है। वही बुद्धि और वही बानी-बोली रहती है पर पैसे की गर्मी जहां गई वहां एक क्षण में ही आदमी क्या से क्या हो जाता है।

अब जब सभी की राय एक ही थी तो फिर उनको यह मन बनाते देर क्यों लगती कि हमें धन कमाने के लिए अपने घर और नगर और देश को छोड़कर कहीं और चलना चाहिए। उन्होंने ऐसा ही किया क्योंकि दुनिया की यही रीति है कि इसमें परेशानियों में उलझकर आदमी सच बोलना छोड़ देता है, सगों-संबंधियों को छोड़ देता है, अपनी जन्मभूमि को छोड़ देता है और अपने प्रिय स्थान को भी छोड़कर चल देता है।

इस तरह चलते-चलाते वे अवंती नगरी में जा पहुंचे। वहां उन्होंने क्षिप्रा नदी के जल में स्नान करने के बाद महाकाल के दर्शन किए। महाकाल को प्रणाम करके वे निकल ही रहे थे कि

> कोई नहीं जानता कि कब क्या होगा। पर पुरुषार्थ भी कुछ कम बलवान नहीं होता। पानी आकाश से नीचे तो आता ही है पर उसी पर भरोसा करने वालों को प्यासों भी मरना पड़ जाता है। पुरुषार्थी लोग कुआं खोदकर पानी निकाल लेते हैं।

उनका सामना भैरवानंद नाम के एक योगी से हो गया। उन्होंने उस योगी को उस तरह प्रणाम किया जैसे ब्राह्मण को करना चाहिए और फिर वह इन्हें लेकर अपने मठ गया। योगी ने पूछा "आप लोग कहां से आए हैं? कहां जा रहे हैं? किस काम से निकले हैं?"

उन्होंने बताया, "हम लोग तो कुछ कमाने-धमाने के विचार से निकले हैं। जाना वहां है जहां जान जोखिम में डाल कर भी धन कमाया जा सके। मन में तो हम यही ठानकर निकले हैं अब देखिए क्या होता है। कहते हैं, यदि कोई मौका हाथ से न जाने दे और करने या मरने पर उतर आए तो दौलत तो मिल ही जाती है साथ ही बहुत-सी दूसरी दुर्लभ वस्तुएं भी मिल जाती हैं। और फिर यह तो सच है ही कि भाग्य बड़ा बलवान होता है। कोई नहीं जानता कि कब क्या होगा। पर पुरुषार्थ भी कुछ कम बलवान नहीं होता। पानी आकाश से नीचे तो आता ही है पर उसी पर भरोसा करने वालों को प्यासों भी मरना पड़ जाता है। पुरुषार्थी लोग कुआं खोदकर पानी निकाल लेते हैं।"

भैरवानंद तो योगी थे। उन्हें तो अपनी साधना और तपस्या पर ही भरोसा था। वे भला इस बात से कैसे असहमत होते। उन्होंने कहा, "तुम लोग ठीक कह रहे हो। मनुष्य की सभी लालसाएं पौरुष से ही पूरी होती है। जिसे भाग्य कहा जाता है वह भी उस पौरुष का ही दूसरा नाम है जिसको आज हम देख नहीं पाते।"

"जो साहसी लोग होते हैं वे काम के समय अपने प्राणों की चिंता नहीं करते। साहसी लोगों का यह गुण और उदार लोगों का चरित दोनों की बराबरी दुनिया की दूसरी कोई चीज नहीं कर सकती।"

भैरवानंद एकाएक हंसी आई। बोले, "जानते हो, आलसी आदमी के पास यदि धन आ भी जाए तो उसके पास ठहरता नहीं। भगवान विष्णु को ही देख लो, जनाब क्षीर-सागर में पांव पसारे सोए रहते हैं। उनकी लक्ष्मी यदि चंचला कही जाती है तो यह तो होना ही है।"

इन चारों मित्रों ने कहा, यदि आप भी यही मानते हैं तो कोई ऐसा उपाय तो बताइए जिससे हम लोग कुछ नाम बटोर सकें। हमें गरीबी ने इतना सता रखा है कि हम लोग पैसे के लिए कठिन से कठिन और बुरा से बुरा काम भी करने को तैयार हैं चाहे वह खान की खुदाई हो या मसान की साधना या नरमांस की बिक्री। आप तो सिद्ध पुरुष हैं, आप के लिए तो कुछ भी असंभव नहीं है। हमारी हालत आप देख ही रहे हैं कि हम धन पाने के लिए साधना तक करने को तैयार हैं।

भैरवानंद ने चार बत्तियां बनाकर उन्हें देते हुए कहा, "तुम लोग हिमालय की ओर जाओ। वहां पहुंचने पर जहां ये बत्तियां गिर जाएं वहां नीचे धन गड़ा होगा। उसे खोद कर और धन लेकर वापस अपने घर लौट जाना।"

वे चारों हिमालय की ओर मुड़े। चलते-चलते एक स्थान ऐसा आया जहां एक के हाथ की बत्ती गिर गई। जब उसे खोदा गया तो पता चला यह तांबे की खान है। उसने अपने साथियों से कहा, "लो, गड़ा धन तो सचमुच मिल गया। अब आओ जितना तांबा चाहें खोदकर निकाल लें।"

दूसरों को यह बात जंची नहीं। बोले, "मूर्ख कितना तांबा लादकर हम चल पाएंगे। बोझ ढोते-ढोते ही मर जाएंगे। इसका मोल ही क्या है।"

उसने कहा, ऐसी बात है तो तुम लोग जाओ। मैं तो इसे छोड़ने वाला नहीं। जितना संभाल पाऊंगा, लेकर लौट जाऊंगा। उसने ऐसा ही किया।

दूसरे साथी आगे बढ़े। कुछ ही आगे जाने पर दूसरी की बाती भी गिर गई। खोदने पर यह चांदी की खान निकली। उसने भी अपने साथियों से वही बात कही जो पहले साथी ने कही थी। इस पर उसके दूसरे दो साथियों ने कहा, 'पहले तांबे की खान मिली थी। फिर चांदी की खान मिली। इसका मतलब है, इसके बाद सोने की खान मिलेगी। चांदी लेकर लौटना समझदारी न होगी।'

जिस मित्र की बत्ती वहां गिरी थी उसने पहले मित्र की तरह सोचा कि अधिक लोभ करने में जो हाथ आया है वह भी निकल सकता है। जितनी चांदी वह ढो सकता था उतनी चांदी लेकर उसने घर का रास्ता लिया।

बाकी दोनों साथी आगे बढ़े। कुछ आगे जाने पर तीसरे की बत्ती भी गिर गई। खोदने पर सचमुच सोने की खान मिली। अब उस साथी ने दूसरे से कहा, 'अब तो मनचाही

चीज मिल गई। आओ, जितना सोना यहां से ले जा सकते हैं निकालकर वापस लौटें।'

चौथा इसके लिए तैयार न हुआ। उसने कहा, 'पहले तांबा मिला था, फिर चांदी मिली और इसके बाद यह सोना मिल गया। इसके आगे हीरों की खान न हो तो मेरा नाम बदल देना।'

तीसरा साथी इतना मूर्ख नहीं था कि हाथ आया सोना छोड़कर हीरे के लिए दौड़ता। उसने कहा, 'मैं तो आगे जाने को तैयार नहीं हूं। तुम जाओ। मैं यहां तुम्हारी राह देखता रहूंगा।'

अब चौथा साथी आगे चला। कुछ दूर आगे बढ़ा तो भूख प्यास से बेहाल हो गया। ऊपर से धूप भी बहुत तीखी। वह अपने रास्ते से भटक गया। वह इधर-उधर घूमता भटकता रहा। कुछ देर तक यूं ही भटकने के बाद उसे एक आदमी दिखाई दिया। वह खून से लिथड़ा हुआ था और उसके माथे पर एक चक्का घूम रहा था। वह बढ़कर उस आदमी के पास पहुंचा और उससे पूछा, आप कौन हैं? इस तरह घूमते हुए चक्के के नीचे क्यों बैठे हैं? ऐसा कोई आदमी इससे पहले मैंने नहीं देखा था इसलिए मुझे अपना परिचय तो दीजिए।

अभी वह इस तरह की बात कर ही रहा था कि चक्का उस आदमी के सिर से उतर इसके सिर पर आ गया। इस पर उसके अचरज का ठिकाना न रहा। उसने पूछा, 'भाई, बताओ तो सही। यह मामला क्या है?'

उस आदमी ने कहा, 'भाई, यह मेरे माथे भी इसी तरह सवार हो गया था, जैसे तुम्हारे सिर सवार हुआ है।'

ब्राह्मण कुमार ने पूछा, इसके उतरने का कोई उपाय तो बताइए। मुझे बहुत तकलीफ हो रही है।

उसने कहा, 'जब कोई दूसरा आदमी आप की ही तरह सिद्ध बत्ती लेकर आएगा तो यह आप को छोड़कर उसके सिर चला जाएगा।'

उसने पूछा, 'आप कितने समय तक इस हालत में पड़े रहे थे?'

उसने उलटकर प्रश्न कर दिया, इस समय तो वीणा वत्सराज का राज्य है?

उसने कहा, 'भाई मैं तो यह बता ही नहीं सकता कि इसमें कितना समय लगा। यह जान लो कि जब मैं सिद्ध बत्ती लेकर चला था उस समय रामचंद्र का राज्य था। मुझे यहीं पर एक आदमी इसी अवस्था में दिखाई पड़ा था और तुम्हारी ही तरह मैंने भी उससे यह जानना चाहा था कि मामला है क्या और यह पूछते ही यह चक्का मेरे सिर पर आ गया था।'

फिर ब्राह्मण ने पूछा, 'आप तो इस चक्के के नीचे दबे हुए थे फिर आपको दाना-पानी कैसे नसीब होता था?'

> *कहते हैं विद्या से बुद्धि बड़ी होती है। बहुत पढ़े-लिखे लोग भी बुद्धि से काम न लेने के कारण उन ब्राह्मणों की तरह मिट जाते हैं जो सिंह को जिलाने चले थे।*

उस आदमी ने बताया, 'भाई मेरे, कुबेर ने अपने धन की चोरी रोकने के लिए यह चक्का गिनने वाला हिसाब बैठा रखा है। इसके डर से इधर कोई नहीं आता। यदि आ गया तो उसको भी इसी तरह न भूख लगेगी न प्यास, न उम्र गुजरेगी न बुढ़ापा आएगा। बस एक ही अनुभूति बनी रहेगी। वह है पीड़ा की। अब जो कुछ जानता था, वह सब तो बता ही दिया, मुझे यहां से जाने की आज्ञा दीजिए।'

यह कहकर वह आदमी वहां से चला गया।

जब उसके साथी ने देखा कि उसके मित्र को गए हुए बहुत समय बीत गया वह उधर से लौटा ही नहीं तो वह उसके पांवों के निशान देखता हुआ आगे बढ़ा। उसने अपने मित्र को उसी तरह खून से लिथड़ा हुआ और चक्के के नीचे बैठा हुआ पाया। बेचारा आह-ऊह करता हुआ छटपटा रहा था और चक्का लगातार घूम रहा था।

उसने पूछा, 'मित्र यह तुम्हें हो क्या गया?'

उसके साथी ने कहा, 'कहूं क्या? सब भाग्य का खेल है। उसने जो कुछ पिछले आदमी से सुन रखा था वह सारा किस्सा अपने मित्र को सुना दिया।'

मित्र ने कहा, 'मैंने तुम्हें लाख मना किया पर तुम्हारी समझ में यह बात आ ही नहीं रही थी कि आदमी को बहुत अधिक लोभ नहीं करना चाहिए। तुम तो विद्वान भी थे पर तुमसे मूर्ख आदमी दूसरा कहा मिलेगा। कहते हैं विद्या से बुद्धि बड़ी होती है। बहुत पढ़े-लिखे लोग भी बुद्धि से काम न लेने के कारण उन ब्राह्मणों की तरह मिट जाते हैं जो सिंह को जिलाने चले थे।'

घनचक्कर ने कहा, "जरा समझा कर कहो।"

उसने सुवर्णसिद्धि कहानी सुनाई।■

महर्षि वेद व्यास

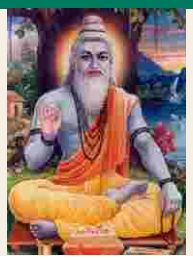

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्जवल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

शूर भगदत्त

आचार्य द्रोण ने युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की कई बार चेष्टा की पर असफल रहे। यह देख दुर्योधन ने एक भारी गज-सेना भीम की ओर बढ़ा दी। भीमसेन ने रथ पर ही खड़े उन लड़ाकू हाथियों के झुण्ड का मुकाबला किया। बाणों की बौछार से हाथियों की बुरी दशा हो गई। अर्द्धचन्द्र बाणों के प्रहार से दुर्योधन के रथ की ध्वजा कटकर गिर गई और धनुष भी टूट गया। दुर्योधन को यों बेहाल होते देखकर अंग नाम का एक मलेच्छराज एक बड़े हाथी पर सवार होकर भीमसेन के सम्मुख आ डटा। मलेच्छराज पर भीम ने नाराज बाणों की जोर की वर्षा की जिसमें मलेच्छराज को अपने हाथी समेत मैदान से लौटना पड़ा। यह देख वहां की सारी कौरव सेना भयभीत होकर भाग खड़ी हुई।

हाथी और रथों में जुते हुए घोड़े जब घबराकर भागने लगे तो हजारों पैदल सैनिक उनके पैरों तले कुचल गये और मृत्यु को प्राप्त हुए। कौरव सेना को इस प्रकार घबराहट के मारे भागते देखकर प्राज्योतिष देश के राजा भगदत्त से न रहा गया। वह अपने विख्यात लड़ाकू हाथी सुप्रतीक पर सवार होकर भीमसेन की ओर बढ़ा। अपनी सूंड को घुमाता हुआ वह हाथी भीमसेन पर झपटा और उसके रथ और घोड़ों को तहस-नहस कर दिया। रथ के नष्ट हो जाने पर भीमसेन बिलकुल नहीं घबराया। हाथियों के मर्म-स्थानों के बारे में उसकी जानकारी खूब थी। इस कारण वह जमीन पर कूद पड़ा और चालाकी से भगदत्त के हाथी के पांव के बीच में से घुसकर उसके शरीर से सटकर नीचे खड़ा हो गया और उसके मर्म-स्थानों पर घूंसे मार-मारकर उसे बेहाल कर दिया। हाथी मारे दर्द के जोरों से चिंघाड़ने लगा। कुम्हार के चाक की भांति वह अपने चारों ओर चक्कर खाने लगा और अपने आपको छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा। घूमते-घूमते अचानक हाथी ने अपनी सूंड से भीमसेन को पकड़ लिया और उसे जमीन पर पटककर अपने पैरों से कुचलने ही वाला था कि इतने में भीमसेन बड़ी चपलता से उसकी पकड़ में से छटक गया और फिर से उसके पैरों के बीच जा घुसा और पहले की भांति उसे घूसे मार-मार कर तंग करने लगा।

मलेच्छराज एक बड़े हाथी पर सवार होकर भीमसेन के सम्मुख आ डटा। मलेच्छराज पर भीम ने नाराज बाणों की जोर की वर्षा की जिसमें मलेच्छराज को अपने हाथी समेत मैदान से लौटना पड़ा। यह देख वहां की सारी कौरव सेना भयभीत होकर भाग खड़ी हुई।

भीमसेन को यह आशा थी कि पांडव सेना का कोई हाथी इधर निकल आवे और सुप्रतीक पर आक्रमण कर दे तो उसे इस संकट से बच निकलने का मौका मिले। पर सेना के और वीरों को इस बात का पता ही नहीं लगा। उधर बड़ी देर तक भीम का पता न चला तो सैनिकों ने शोर मचाया कि भीमसेन मारा गया। भगदत्त के हाथी ने भीमसेन को मार दिया?

यह शोर सुनकर युधिष्ठिर ने भी विश्वास कर लिया कि भीमसेन सचमुच ही मारा गया होगा। यह सोचकर उन्होंने अपने वीरों को आज्ञा दी कि भगदत्त पर हमला बोल दो। इनमें दशार्ण देश के राजा ने अपने लड़ाकू हाथी पर सवार होकर भगदत्त के हाथी पर हमला कर दिया।

दशार्ण के हाथी ने बड़े जोरों के साथ युद्ध किया और सुप्रतीक पर जोर का हमला किया। फिर भी सुप्रतीक के आगे वह अधिक देर टिक नहीं सका। सुप्रतीक ने अपने दांतों से दशार्ण के हाथी ही पसलियां तोड़ दीं। दशार्ण का हाथी चक्कर खाकर गिर पड़ा। इसी बीच समय पाकर भीमसेन सुप्रतीक के पैरों के बीच में से निकल आया।

इधर युधिष्ठिर की भेजी कुमुक आ पहुंची थी और वृद्ध भागदत्त को चारों तरफ से पांडव-वीरों ने घेर लिया। बाणों के वार से उसका हाथी और वह स्वयं दोनों बुरी तरह घायल

हो गये, परंतु फिर भी भगदत्त इससे विचलित नहीं हुआ। दावानल की भांति बूढ़े वीर भगदत्त का कलेजा जल रहा था। घेरे हुए शत्रु वृन्द की बिल्कुल परवाह न करके उसने सात्यकि के रथ की ओर ही हाथी दौड़ा दिया। हाथी ने सात्यकि के रथ को उठाकर हवा में फेंक दिया। सात्यकि फुर्ती से जमीन पर कूद पड़ा वरना उसका बचना कठिन हो जाता। उसका सारथी बड़ा कुशल था। उसने आकाश में फेंके गये रथ और घोड़ों को बड़ी कुशलता से बचा लिया और फिर से रथ को उठाकर ठीक-ठाक कर लिया और सात्यकि के नजदीक ले आया।

भगदत्त के हाथी ने पांडव-सेना को बहुत तंग किया। वह निधड़क होकर सेना के अंदर घुसकर सैनिकों को उठा-उठाकर फेंकने लगा और उसने चारों ओर तबाही मचा दी। इस हमले से सैनिकों को बड़ी घबराहट हुई। हाथी पर शान से खड़ा राजा भगदत्त ठीक उसी तरह पांडव-सेना के वीरों को मौत के घाट उतार रहा था मानो देवराज इन्द्र अपने ऐरावत पर खड़े असुरों का वध कर रहे हों।

इस बीच भीमसेन फिर से रथ पर सवार होकर सुप्रतीक पर हमला करने लगा, परंतु मतवाले हाथी ने उसके रथ के घोड़ों की ओर सूंड बढ़ाकर जोर से ऐसी फुंकारें मारी कि घोड़े घबराकर भाग खड़े हुए।

उधर दूसरी ओर दूर पर अर्जुन संशप्तकों से लड़ रहा था। उसने देखा कि जहां पांडव-सेना थी, वहां आकाश तक धूल उड़ रही है और हाथी की चिंघाड़ें भी सुनाई दे रही हैं। यह देखकर उसने ताड़ लिया कि जरूर कोई-न-कोई अनर्थ हो रहा होगा। वह श्रीकृष्ण से बोला-

"मधुसूदन, सुनिए तो! भगदत्त के लड़ाकू हाथी सुप्रतीक की चिंघाड़ सुनाई दे रही है। लड़ाकू हाथी को चलाने वालों में भगदत्त का सानी संसार में कोई नहीं है। मुझे डर है कि कहीं वह हमारी सेना को तितर-बितर करके हरा न दे। हमें शीघ्र ही उधर चलना चाहिए। इन संशप्तकों को जितना हरा चुके हैं, अभी तो उतना ही काफी है। इनको यहीं छोड़कर उधर चलना जरूरी मालूम देता है, जहां द्रोणाचार्य युधिष्ठिर से लड़ रहे हैं।"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन की बात मान ली और उन्होंने रथ उसी ओर को घुमा दिया, जिधर भगदत्त के हाथी और भीम का युद्ध हो रहा था। सुशर्मराज और उसके भाई संशप्तक अर्जुन के रथ का पीछा करने लगे और ठहरो, ठहरो, चिल्लाते हुए आक्रमण भी करने लगे। यह देख अर्जुन बड़ी दुविधा में पड़ा। क्षण-भर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ होकर सोचने लगा कि 'क्या करें? सुशर्म यहां पर ललकार रहा है। उधर उत्तरी मोर्चे पर सेना का व्यूह टूट रहा है और संकट का मौका आ गया है। उधर जायें तो सुशर्म समझेगा कि डरकर भाग रहा है, यहीं पर डटे रहें और उधर सेना को तुरंत मदद न पहुंची तो किया-कराया सब चौपट हो जायेगा।'

अर्जुन इसी सोच-विचार में पड़ा हुआ था कि इतने में सुशर्म ने एक शक्ति अस्त्र अर्जुन पर छोड़ा और एक तोमर श्रीकृष्ण पर। सचेत होकर तुरंत ही अर्जुन ने तीन बाण मारकर सुशर्म को जवाब दे दिया और भगदत्त की ओर रथ को तेजी से बढ़ाये चलने के लिये श्रीकृष्ण से कहा।

अर्जुन के पहुंचते ही पांडवों की सेना में नया उत्साह आ गया। सब जहां के तहां रुक गये। भागने की किसी ने चेष्टा न की। सेना संभल गई और तुरंत हमला करने को प्रस्तुत हो गई। वहां मोर्चे पर पहुंचते ही कौरव सेना पर जोरों का हमला करके अर्जुन भगदत्त की तरफ बढ़ा। भगदत्त ने तत्काल अपना हाथी अर्जुन पर चला दिया। भगदत्त का हाथी अर्जुन के रथ पर काल की तरह झपटा पर श्रीकृष्ण ने बड़ी कुशलता से रथ को हाथी के रास्ते से हटाकर बचा लिया।

हाथी पर सवार भगदत्त ने अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों पर ही बाण बरसाने शुरू किये। अर्जुन ने हाथी के कवच पर तीर मारकर पहले उसी को तोड़ दिया। इस कारण सुप्रतीक के शरीर पर बाणों का असर होने लगा। उसे इससे बहुत पीड़ा हुई। यह देख भगदत्त ने श्रीकृष्ण पर एक शक्ति फेंकी। अर्जुन ने बाणों से उसके टुकड़े कर दिए। इसके बाद भगदत्त ने एर तोमर अर्जुन पर चलाया। तोमर अर्जुन के मुकुट पर जा लगा। इससे अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। उसने अपना मुकुट संभालकर रख लिया और बोला- "भगदत्त, अब इस संसार को अंतिम बार अच्छी तरह देख लो।" और यह कहते-कहते अपना गांडीव धनुष तान लिया। राजा भगदत्त उम्र में वृद्ध था। उसके पके बाल और भरे हुए चेहरे पर वृद्धावस्था के कारण झुर्रियां देखकर सिंह का स्मरण हो आता था। भौहों पर का चमड़ा लटककर आंखों पर आ पड़ा था। भगदत्त उसे

हाथी पर सवार भगदत्त ने अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों पर ही बाण बरसाने शुरू किये। अर्जुन ने हाथी के कवच पर तीर मारकर पहले उसी को तोड़ दिया। इस कारण सुप्रतीक के शरीर पर बाणों का असर होने लगा। उसे इससे बहुत पीड़ा हुई।

द्रोण ने देखा कि उनकी सेना बुरी तरह मात खा रही है। कितने ही सैनिक घायल हो गये हैं, कितने ही वीरों के कवच टूट गये हैं। लोगों में लड़ने का साहस नहीं रहा है। हालत यहां तक हो गई है कि किसी-किसी की बुद्धि भी ठिकाने नहीं रही। अपनी सेना का यह हाल देखकर द्रोणाचार्य ने लड़ाई बंद कर दी।

एक रेशमी कपड़े से उठाकर बांधे रखता था। शूरता में उसका कोई सानी नहीं था। अपने शील-स्वभाव और प्रताप के कारण वह क्षत्रियों में प्रसिद्ध था। यहां तक कि लोग बड़ी श्रद्धा से कहा करते थे कि भगदत्त इन्द्र का मित्र है। अर्जुन के चलाये बाणों से भगदत्त का धनुष टूट गया। तरकस का भी यही हाल हुआ और अर्जुन ने भगदत्त के मर्म-स्थानों पर भी बाण चलाकर उन्हें छेद डाला था।

उन दिनों योद्धा लोग कवच पहना करते थे। अस्त्र-शस्त्र विद्या सिखाते समय यह भी सिखाया जाता था कि कवच के होते हुए भी शरीर को बाणों से कैसे बींधा जा सकता है।

वृद्ध भगदत्त के सब हथियार नष्ट हो गये। इसलिये उसने हाथी का अंकुश ही उठा लिया और उसे अभिमंत्रित करके अर्जुन पर छोड़ा। वह अस्त्र अर्जुन के प्राण ले ही लेता, यदि श्रीकृष्ण की छाती पर लगते ही वह शक्ति वन-माला सी बनकर श्रीकृष्ण की शोभा बढ़ाने लगी।

अर्जुन के अभिमान को इससे बड़ा धक्का लगा। वह श्रीकृष्ण से बोला- "जनार्दन! शत्रु का चलाया हथियार अपने ऊपर लेना क्या आपके लिये उचित था? जब आप यह घोषणा कर चुके हैं कि केवल रथ ही चलायेंगे, युद्ध न करेंगे तो फिर आपका यह कहां का न्याय है कि धनुष लिये तो मैं सामने खड़ा रहूं और वार आप अपने ऊपर झेल लें?"

यह सुन श्रीकृष्ण हंसते हुए बोले- "पार्थ! तुम नहीं जानते! यदि मैं इसे अपने ऊपर न ले लेता, तो यह अस्त्र तुम्हारे प्राण लेकर ही छोड़ता। वह मेरी चीज थी और मेरे पास लौट आई।"

अर्जुन ने सुप्रतीक पर तानकर एक बाण चलाया। वह हाथी के सिर को चीरता हुआ इस प्रकार अंदर चला गया जैसे बिल के अंदर सांप। बाण के लगने से हाथी चिंघाड़ता हुआ बैठ गया। भगदत्त ने उसे बहुत उकसाया, डांटा-डपटा, लेकिन हाथी ने उसकी एक न सुनी और बैठा ही रहा। पीड़ा के मारे बुरा हाल था उसका। बेहाल होकर वह दांतों से जमीन खोदने लगा और थोड़ी ही देर बाद खत्म हो गया।

हाथी के मर जाने पर अर्जुन को दुःख हुआ। वह चाहता था कि अकेले भगदत्त को ही गिरावे और हाथी को न मारे। पर ऐसा न हो सका। उसके बाद अर्जुन के तेज बाणों से भगदत्त की आंखों के ऊपर बंधी रेशमी पट्टी कट गई जो उसकी आंखों के ऊपर लटक आने वाली चमड़ी को ऊपर उठाये रखती थी। इससे भगदत्त की आंखें बंद हो गई। उसे कुछ नहीं सूझने लगा। वह अंधेरे में मानो विलीन हो गया। थोड़ी ही देर बाद एक और पैने बाण ने उसकी छाती छेद डाली।

सोने की माला पहने भगदत्त जब हाथी के मस्तक पर से गिरा तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी पर्वत की चोटी पर से फूलों से लदा हुआ वृक्ष आंधी से उखड़कर गिर रहा हो। भगदत्त को गिरते देखकर कौरवों की सेना मारे भय के तितर-बितर होने लगी।

किंतु शकुनि के दो भाई वृषक और अचक तब भी विचलित न हुए और जमकर लड़ते रहे। उन दोनों वीरों ने अर्जुन पर आगे और पीछे से बाणों की वर्षा करके खूब परेशान किया। अर्जुन ने थोड़ी देर बाद उन दोनों के रथों को तहस-नहस कर दिया और उनकी सेनाओं पर भी भयानक बाण वर्षा की। सिंह-शिशुओं के समान वे दोनों भाई अर्जुन के बाणों से घायल होकर गिर पड़े और मृत्यु को प्राप्त हुए।

अपने अनुपम वीर भाइयों के मारे जाने पर शुकनि ने क्रोध और क्षोभ की सीमा न रही। उसने माया-युद्ध शुरू कर दिया और उन सब उपायों से काम लिया जिनमें उसे कुशलता प्राप्त थी। परंतु अर्जुन ने उसके एक-एक अस्त्र को अपने जवाबी अस्त्रों से काट डाला और उसकी माया का प्रभाव दूर कर दिया। अंत में अर्जुन के बाणों से शकुनि ऐसा आहत हुआ कि उसे युद्ध क्षेत्र से हटना पड़ा।

इसके बाद तो पांडवों की सेना द्रोणाचार्य की सेना पर टूट पड़ी। असंख्य वीर खेत रहे। खून की नदियां बह चलीं। थोड़ी देर बाद सूर्य अस्त हुआ। द्रोण ने देखा कि उनकी सेना बुरी तरह मात खा रही है। कितने ही सैनिक घायल हो गये हैं, कितने ही वीरों के कवच टूट गये हैं। लोगों में लड़ने का साहस नहीं रहा है। हालत यहां तक हो गई है कि किसी-किसी की बुद्धि भी ठिकाने नहीं रही। अपनी सेना का यह हाल देखकर द्रोणाचार्य ने लड़ाई बंद कर दी। दोनों पक्षों की सेनाएं अपने-अपने डेरों को चल दीं और इस प्रकार बारहवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ।■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्विन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेलः prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

वेद की कविता

सूर्या विवाह

(ऋग्वेद मंडल १० सूक्त ८५)

सूर्याया बहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्
अघासु हन्यन्ते गावो ऽर्जुन्योः पर्युह्यते।१३।

पिता रवि ने दान बहुधा
पूर्व इसके कि पति गृह सूर्या पहुंचे
वहाँ भेजा
मघा वह नक्षत्र था जब धेनु धन पहुंचा
बधू के फाल्गुनी में पहुँचने के पूर्व ही।

यदश्विना पृच्छमानावयातम् त्रिचक्रेण वह्तुम् सूर्यायाः
विश्वे देवा अनु तद्धामजानन् पुत्रः
पितरावृणीत पूषा।१४।

तीन पहियों से बने रथ में
स्वयं जब सूर्या का अश्विनीसुत आये वरण करने
देवताओं ने किया इसका समर्थन
पुत्र पूषा ने तुम्हारा भी
तत्समय ही कर लिया जैसे चयन।

यदयातं शुभस्पती वरेयम् सूर्यामुप
क्वैकम् चक्रं वामासीत् क्व देष्टाय तस्थथुः।१५।

अश्विनी सुत तुम, जब वरण करने चले सूर्या का
चक्र रथ का तुम्हारा पहला कहाँ था?
कहाँ रहते उस समय थे तुम
जिस समय प्रस्ताव तुमने यह किया?

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदध्दातय इद्विदुः।१६।

चक्र हैं दो तुम्हारे सूर्य-शशि
ऋतुकर तीसरा तो एक संवत्सर अलख है
ज्ञात है यह मात्र
वेदविद् विद्वतजनों को ही।

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्यो ऽकरं नमः।१७।

देव, रवि, मित्रा वरुण
सब प्राणियों के सुखद
हितप्रद देवताओं को यह
है नमन मेरा।

पूर्वापरम् चरतो माययेतौ शिशु क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम्
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतुरन्यो विदधज्जायते पुनः।१८।

पूर्व पश्चिम में विचरते तेज अपने
यज्ञ में आते सदा क्रीडा सहज
देखता रवि एक सारा भुवन यह निर्भ्रांत
दूसरा- शशि
मास, संवत्सर द्विधा निर्माण करता है।
■

क्रमशः...

उमेश ताम्बी

जन्म, नागपुर के समीप तुमसर शहर में उद्योगी परिवार में हुआ. नागपुर विश्वविद्यालय से १९८७ की प्रावीण्य सूची में अभियांत्रिकी स्नातक में प्रथम स्थान पाया, १९८९ में एडमिनिस्ट्रेशन में स्नातकोत्तर. १९९९ तक स्वयं के उद्योग-व्यवसाय में भारत में सफलता पाने के बाद अमेरिका पहुँचे. साफ्टवेयर के क्षेत्र में कार्यरत हैं. फिलाडेल्फिया के पास परिवार के साथ रहते हैं. हिंदी भाषा के प्रति अटूट प्रेम, बचपन से ही हास्य और व्यंग्य कविताओं के प्रति रुचि रही है. कुछ समय से अनुभव और विचारों को साहित्य और काव्य का रूप देने का प्रयास शुरू किया है.

सम्पर्क : फिलाडेल्फिया, यू.एस.ए. ईमेल : umesh.tambi@gmail.com

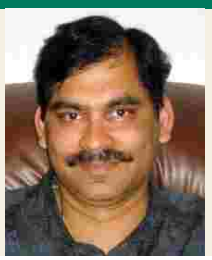

मुसीबत के फूल

परेशानी का कारण अब न रहा अनजाना
मुश्किल है केक, चॉकलेट का मोह छोड़ पाना?
मानव सभ्यता में हैं महत्वपूर्ण पकाना,
खाना और खिलाना
आहार, स्वास्थ्य और व्यायाम का
सम्बन्ध है सदियों पुराना।

निर्मल मन और स्वास्थ को क्षति पंहुचाना
मधुमेय हो या रक्तचाप का ऊपर नीचे जाना
चलने फिरने, घूमने और घुमाने के
प्रचलन का कम हो जाना,
दुर्लभ हो गया जीना, स्मार्ट फ़ोन
फेसबुक और टीवी का है ज़माना।

प्रेम और करुणा दोनों का स्त्रोत है
मन यह हमने माना
प्रेम और करुणा साथ-साथ रहते हैं स्वार्थ बिना
प्रेम में स्वार्थ के जुड़ते ही करुणा का क्षीण हो जाना
हृदय में करुणा भरी है या
स्वार्थ मुश्किल है पहचानना।

जिसे माफ़ न कर सको उसे भूल जाना
जिसे भूल न सको उसे माफ़ करते जाना
बन न सको फूल तो कांटे बनकर मत रहना
जीवन में शान्ति का है यह आश्चर्य,
किन्तु सत्य का ताना बाना।

■

उम्र यूं ही तमाम होती है

जीवन के मार्मिक दौर में
बहुत पाया और बहुत कुछ खोया
क्या पाया? और क्या खोया?
मूल्यांकन करना होगा उत्थान और स्वाभिमान के लिए
सुबह का भूला यदि शाम को घर लौट जाये
तो भूला नहीं कहलाता
यदि खबर गलत छप जाती अखबार में
तो लिखा पातें हैं भूल सुधार के लिए!!

गरिमा, वैभव, किन्तु-परन्तु नियम हैं
शिष्टाचार के लिए
व्यर्थ है वो अर्थ जो संग्रहित हो
असमर्थन और दुष्प्रचार के लिए
जनहित और देशहित हैं
निज हित और स्वार्थ के लिए
नियमबद्ध और अकारथ विचार हैं
प्रदर्शन मात्र के लिए

सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है
ऐसा भास होता है
मन बेचैन और दिल परेशां
ऐसा अहसास होता है
जब भी ये मन उदास होता है
आइना आस पास होता है
कारी रात के बाद सुनहरी भोर होगी
ऐसा आभास होता है
पच्चीस बीते और पच्चीस और बिताने हैं
पचास होने के लिए
मिनिट, घंटे, दिन, महीने, साल बीतेंगे
उम्र गुजारने के लिए
जुड़े वास्तविकता और समय सूचकता से
न केवल इतिहास के लिए
क्यों न, पल दो पल मन की बात कर लें
स्मृति और अटहास के लिए?

■

विष्णु प्रसाद त्रिपाठी

१५ मई १९५२ को मिर्जापुर, उत्तरप्रदेश में जन्म। विचारपरक साहित्य पढ़ने की अभिरुचि। कहानी और कविता लिखते हैं। कुछ समय तक सुमति (समकालीन विचार की पत्रिका) का चारुदत्त उपनाम से संपादन किया। सम्प्रति - भारतीय रिजर्व बैंक से सेवा निवृत्त होकर लखनऊ में निवास।

ईमेल : vishnuprasadtripathi@yahoo.com

कविता

कहना होगा

दृष्टि जगत की जहाँ गलत है
कहना होगा
सुनकर और देख कर दुःख
गूंगापन ढोना ठीक नहीं है
रहना है तो कहना होगा।

दृश्य सामने साफ-साफ
दे गया चुनौती
लेकिन रोक नहीं पाये हम
बीमारी बढ़ गयी
गंदगी नहीं हटी तो
संक्रामकता के प्रभाव को सहना होगा।

ऊँचे से ऊँचे मचान की गहन सुरक्षा
निचली पगडंडी में है खतरे का पानी
पौरुष का यौवन मशीन से आतंकित है
आशंका से ग्रस्त बुद्धि की हुई जवानी
इसीलिए हमको कहना है
बार-बार कहते रहना है
स्थापित पगडंडी की लीकें छोड़-छोड़ कर
कहने वाले लोगों को तो
कहने लायक रहना होगा।

संकट गहरे देह-जान के

संकट गहरे देह-जान के
अंतर्गत विधिवत विधान के।
लुप्त सुसुप्त विशिष्ट चितेरे
विस्तृत विविध विरूप अंधेरे
धरती पर धर पाँव न पाते
सपने-सपने आसमान के।
पद-पद-पद पदभ्रष्ट विराजे
दुर्गति जन-जन जनगणराजे
प्रगति-प्रगति गति विगति बनाते
निज गृह-कृषि कुल देश मान के।
नीतिहीन सब खेल-खिलौने
सत्ता के ओढ़ने बिछौने
इनके उनके द्वन्द्व रचाते
सब विरुद्ध जन-स्वाभिमान के।
शीर्ष सभासद सचिव विधायक
सब उन्नायक जन अधिनायक
समझ नहीं आता क्या समझे
प्रमुख पात्र निज राष्ट्रगान के।

■

मुनेन्द्र कुमार प्रताप
१९६५ में जन्म। हिंदी पठन-पाठन में रुचि। कविता एवं संस्मरण लिखते हैं। सम्प्रति - कोटा, राजस्थान में निवास है।
सम्पर्क : pratap@gail.co.in

काम की महिमा

हर अधीर मन को बहलाया किसी काम ने,
भुला दिया दुखमय अतीत को सुबह शाम ने।

काम योग है तुम जिससे चाहो जुड़ जाओ,
दुविधा के हल दूर खोजने कभी न जाओ।

मेहनत करके काम किया था अब तक जिसने,
सुस्ताकर शक्ति बटोर ली फिर से उसने।

दम लेने में सुख मिलता है पता लगेगा,
जब-जब कोई थक जाने तक काम करेगा।

अद्‌भुत है उतना, तू जितना जान सके,
काम शस्त्र है एक, जो मन को थाम सके।

■

कम खा

कर परहेज बाहर खाने से
अक्सर अपने घर पर खा
और कभी खा लेना ज्यादा
आज जरा-सा कम ही खा।

सबसे अच्छी सादा रोटी
पकवानों को तू मत खा
चाहे जितना पी ले पानी
ठोस माल तू कम ही खा।

धीरे-धीरे वजन घटा ले
तोंद जरा सी कम कर ले
स्वाद-स्वाद में धीरे-धीरे
लिमिट से ज्यादा कभी न खा।

जल्दी खा ले डिनर हमेशा
देर-रात, को कभी न खा
मिलना-जुलना ठीक है प्यारे
रोज पार्टी तू मत खा।

और कभी खा लेना ज्यादा
आज जरा-सा कम ही खा।

■

डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'

१ नवम्बर १९६२ के समशेर नगर, बहादुर गंज, सीतापुर, उत्तर प्रदेश में जन्म। विगत दो दशकों से साहित्य सृजन में सक्रिय। 'दलित साहित्य का स्वरूप विकास और प्रवृत्तियाँ' पुस्तक शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली सद्यप्रकाशित। शिरोमणि सम्मान (साहित्य, कला परिषद जालौन) तथा तुलसी सम्मान (मानस स्थली, सूकरखेत, उत्तर प्रदेश) से सम्मानित।

सम्पर्क : dr.gunshekhar@gmail.com

फागुनी दोहे

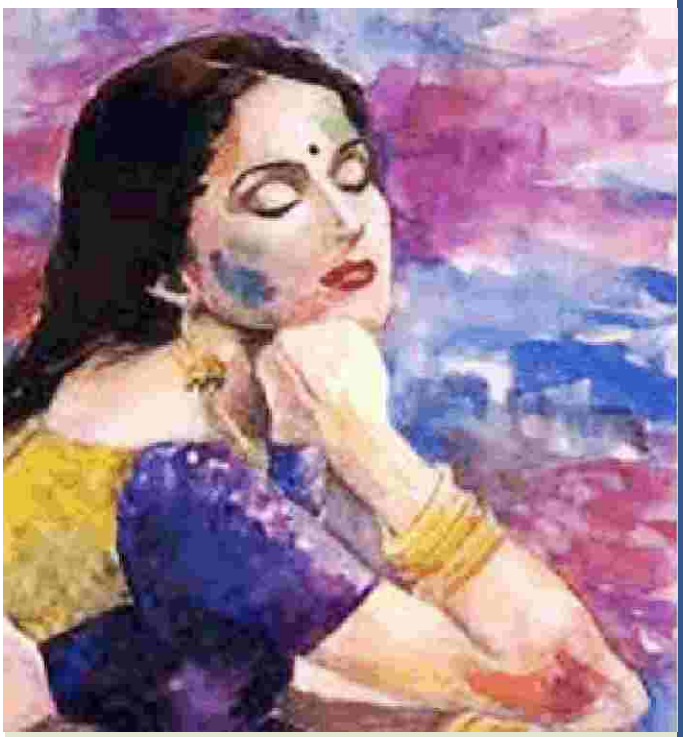

लगा महावर खड़ी है, तीसी फागुन द्वार।
धानी चूनर ओढ़ के, धरती भी तैयार।।

जब भी मन की होलिका, गई काम के द्वार।
आग लगी लपटें उठीं, राख हुआ घर-बार।।

गोदी देकर होलिका, बिठा-बिठा प्रह्लाद।
आग लगाते आ रहे साल, साल दर साल।।

जिनकी कामुक वासना, रही रास्ता छेंक।
खेलें होली काम की, मन का कीचड़ फेंक।।

माया, मदिरा मान की, जली होलिका देख।
बड़े प्रेम से मिल रहे, ठाकुर, पंडित, शेख।।

खूब चटख-से रंग में, भरे गुलाबी प्यार।
फागुन करता आ रहा, होली की मनुहार।।

धो सकती है होलिका, सबके मन का मैल।
पर धुलने की क्या कहें, और रहा है फैल।।

मन के प्यारे खेल को, रहे देह से खेल।
सारी कुंठा, वासना, ऐसे रहे उंडेल।।

चाहे कपड़े नए हों, या अनगिन पकवान।
सब के सब फीके लगें, बिना प्यार, सम्मान।।

होली में ऐसे हुए, तन-मन चंग-मृदंग।
बजते-बजते, ताल, लय, सारे हो गए भंग।।

■

डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा

९ नवम्बर १९६४ को बिजनौर, उत्तरप्रदेश में जन्म। शिक्षा- स्नातकोत्तर (संस्कृत), श्री मूलशंकर माणिक्यलाल याज्ञिक की नाट्य कृतियों का नाट्य शास्त्रीय अध्ययन विषय पर शोध कार्य। अनके वर्षों तक शिक्षण कार्य किया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित। सम्प्रति - वापी, गुजरात में निवास।

सम्पर्क - एच (टावर)-६०४, प्रमुख हिल्स, छरवाडा रोड, वलसाड, गुजरात-३९६१९१ ईमेल- jyotsna.asharma@yahoo.co.in

एक

चमन बेज़ार हो सारा मुझे अच्छा नहीं लगता
हवा हो जाय आवारा मुझे अच्छा नहीं लगता

मेरे हिस्से की, कुछ खुशियाँ, उसको भी अता करना
कोई दिल दर्द का मारा मुझे अच्छा नहीं लगता

तुम्हारी रहमतों में भी सुकूँ से सो नहीं पाती
कोई बेघर, बेचारा मुझे अच्छा नहीं लगता

बुलंदी और ये शोहरत मुबारक हो तुम्हें साथी
हो मेरे नाम का नारा मुझे अच्छा नहीं लगता

कभी ख्वाहिश कोई मेरी पूरी हो न पूरी हो
फलक से टूटता तारा मुझे अच्छा नहीं लगता।

■

दो

यकीं मानो कि मुझसे ये नज़ारे बात करते हैं
रहूँ खामोश मैं फिर भी ये सारे बात करते हैं

अँधेरी रात होती है कि गम भी साथ चलते हैं
अजब हैरान हूँ मुझसे सितारे बात करते हैं

समेटे दर्द बाहों में बह जाती हूँ दरिया सी
बड़ी तस्कीन दे दे कर किनारे बात करते हैं

इतनी ज़िल्लतें सहकर वो कैसे जी गया होगा
जला दें जाल नफ़रत का शरारे बात करते हैं

रब जाने कि क्या होगा वतन का हाल और अपना
हमीं से गैर का होकर हमारे बात करते हैं

करें हम शायरी इतनी कहाँ हम में लियाक़त थी
तुम्हारी ही दुआओं के सहारे बात करते हैं

निर्मल नीर हो जिसमें, नदी पाई है वो तुझमें
भले हो मौन भावों के किनारे बात करते हैं।

■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म. अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित. पेशे से इंजीनियर. अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं. सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

शायरी की बात

क्या करे कोई दुआ जब देवता बीमार है

आधुनिक दौर में कुमार विनोद बिलकुल अलग बेबाक अंदाज़ में अपनी बात कहने वाले निराले युवा शायर हैं। उनकी किताब 'बेरंग हैं सब तितलियाँ' के पन्नों में बिखरे अशआर इस बात का प्रमाण आप हैं।

आस्था का जिस्म घायल रूह तक बेज़ार है
क्या करे कोई दुआ जब देवता बीमार है
खूबसूरत जिस्म हो या सौ टका ईमान हो
बेचने की ठान लो तो हर तरफ बाज़ार है

विनोद की शायरी की सबसे बड़ी खूबी है उसकी भाषा। वो अपने पाठक को भारी-भरकम लफ़्ज़ों के बोझ तले नहीं दबाते बल्कि उनकी पंखुरियों से हल्के-हल्के सहलाते हैं। यही कारण है कि उनके शेर पढ़ते-पढ़ते ही ज़बान पर चढ़ जाते हैं और बाद में पाठक उन्हें अपने आप गुनगुनाने लगता है।

तल्खियाँ सारी फ़ज़ा में घोल कर
क्या मिलेगा बात सच्ची बोल कर
बात करते हो उसूलों की मियां
भाव रद्दी के बिके सब तोलकर

इस किताब को आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा ने प्रकाशित किया है। कुमार विनोद का यह पहला ग़ज़ल संग्रह है। उनकी ग़ज़लें हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में समय-समय पर छप कर अपनी पहचान पहले ही बना चुकी हैं। युवा ग़ज़लकार की इन ग़ज़लों ने मुझे अन्दर से छुआ है और अपना प्रशंसक बना लिया है।

लाख चलिए सर बचा कर, फायदा कुछ भी नहीं
हादसों के इस शहर का, क्या पता, कुछ भी नहीं
एक अन्जाना सा डर, उम्मीद की हल्की किरण
कुल मिला कर ज़िन्दगी से क्या मिला, कुछ भी नहीं

इस किताब में एक खूबी और है जो बहुत कम किताबों में नज़र आती है वो ये के किताब की ग़ज़लें किताब खोलते ही पाठकों के रूबरू हो जातीं हैं। इस किताब में किसी भी तरह की कोई भूमिका ना तो किसी नामचीन शायर ने लिखी है और ना ही शायर ने खुद। बस 'तेरा तुझ को अर्पण क्या लागे मोरा' वाले भाव से ये पुस्तक ज्यूँ की त्यूँ पाठकों को सौंप दी गयी है। पाठकों और ग़ज़लों के बीच कोई नहीं है। इसका एक बहुत बड़ा लाभ भी है और वो ये की पाठक बिना इस पुस्तक को पूरा पढ़े इस के बारे में कोई राय नहीं बना सकता और पढ़ कर वो जो भी राय बनाएगा अच्छी या बुरी वो किसी और की विचारधारा से प्रभावित नहीं होगी बल्कि सिर्फ उस पाठक की ही होगी। आज के दौर में ऐसा जोखिम उठाने वाले बिरले ही मिलेंगे.

गाँव से आकर शहर में यूँ लगा
सच हुई दुश्मन की जैसे बद्दुआ
डॉक्टर ने हाले दिल उसका सुना
बस यही थी बूढ़े रोगी की दवा

विनोद ने रोजमर्रा के प्रतीकों से अपने अशआरों को नयी ऊँचाई दी हैं। उनके नए-नए शब्द प्रयोग उन्हें अपने समकालीनों से अलग करते हैं।

> *इन ग़ज़लों में जहाँ आज की त्रासद विसंगतियों का जिक्र है वहीं अपने आप पर भरोसा बनाये रखने पर जोर भी है। यह किताब एक ईमानदार कोशिश की तरह है जिसकी हौसला अफजाही करनी ही चाहिए।*

बड़ी हैरत में डूबी आजकल बच्चों की नानी है
कहानी की किताबों में न राजा है, न रानी है
घनेरे बाल, मूंछें और चेहरे पे चमक थोड़ी
यकीं कीजे, ये मैं ही हूँ, ज़रा फोटो पुरानी है

विनोद जी कुरुक्षेत्र विश्व विद्यालय के गणित विभाग में एसोसियेट प्रोफ़ेसर हैं, तभी उनके कहने का सलीका और मिजाज़ बहुत नपा-तुला है। मात्र सौ रुपये मूल्य की ये पुस्तक आधार प्रकाशन ने प्रकाशित की है। जिसे aadhar_prakashan@ yahoo.com पर लिख कर या सीधे विनोद जी से उनके मोबाईल नं. ०९४१६१३७१९६ पर संपर्क कर प्राप्त करने का आग्रह कर सकते हैं।■

वेद मित्र, एम.बी.ई.

५ अगस्त, १९३८, लुधियाना (पंजाब) में जन्म. अधिकांश समय हिन्दी के प्रचार-प्रसार में संलग्न. १९८० से लंदन में हिन्दी पढ़ाते रहे हैं. इनके सैकड़ों विद्यार्थी ओ लेवल तथा ए लेवल हिन्दी परीक्षाओं में उच्च स्तर प्राप्त करते रहे हैं. प्रकाशित रचनाएं - समूची हिन्दी शिक्षा (४ भागों में) - १९९२. विदेशियों और भारतवंशियों को हिन्दी सिखाने का पूरा पाठ्यक्रम - पुस्तक के तीन संस्करण छप चुके हैं और ४० से भी अधिक देशों में हिन्दी शिक्षण के लिए प्रयोग की जा रही है. सम्मान - ब्रिटेन की महारानी ने २००७ में शिक्षा के क्षेत्र में दी गई सेवाओं के लिए विभूषित किया. २००८ में भारतीय उच्चायोग, लंदन ने जॉन गिलक्रिस्ट हिन्दी सम्मान प्रदान किया. सम्प्रति : किंग्स कॉलेज, लंदन में हिन्दी अध्यापन.

सम्पर्क : 356, Vale Road, Ash Vale, Surrey GU12 5LW email: vedmohla@yahoo.com

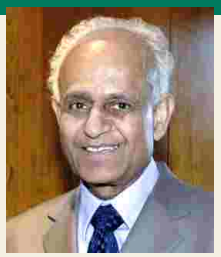

कहानी

वह कोई स्वप्न नहीं था

जब आत्महितकारी दल ने एक अविश्वास प्रस्ताव के बल पर नई सरकार बनाने की घोषणा की, तो पूरे देश में अप्रत्याशित सनसनी फैल गई। हर व्यक्ति की जिह्वा पर एक ही प्रश्न था क्या मनोनीत प्रधानमंत्री, घोटाला प्रसाद देश में वर्षों से फैली जड़ता से जनता को मुक्त करा पाएंगे? क्या वे सचमुच देश को ऐसा प्रजातंत्र दे पाएंगे जिसमें सरकार वे काम करेगी जिनसे जनता का वास्तविक हित होगा? क्या कागजों पर लिखी नीतियों पर सचमुच अमल होगा? क्या जनता वस्तुतः जनार्दन बन जाएगी?

पिछले कुछ वर्षों में घोटाला प्रसाद ने देश के प्रशासन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का वायदा किया था। वह वायदा वे भूले नहीं। पदग्रहण करने की शपथ लेते ही उन्होंने अपनी नई नीति की घोषणा की। उन्होंने स्वीकारा कि भ्रष्टाचार देश के जन-जीवन में घुन की तरह इस सीमा तक फैल गया है कि उसने समस्त सामाजिक जीवन को खोखला कर डाला है। उन्होंने यह भी माना कि भ्रष्टाचार के घुन से मुक्ति पाए बिना देश की प्रगति संभव नहीं। घोटाला प्रसाद इस वस्तुस्थिति से पूर्णतः परिचित थे कि जिस अभियान को लेकर वे चले हैं, वह कोई सरल कार्य नहीं था। उन्होंने इस प्रकार के सभी पूर्व अभियानों को चलाने वालों और उन अभियानों की नियति का विस्तृत अध्ययन किया था। ताजा इतिहास ऐसे अनगिनत नेताओं की करुणागाथा से भरा हुआ था, जो बड़े उत्साह से चले तो थे भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए, परन्तु स्वयं उसकी चपेट में आकर स्वयं नष्ट हो गए थे। ऐसे नेताओं की कहानियां न केवल असफल अभियानों की गाथाएं सुनाती थीं, अपितु जनसाधारण के स्मृतिपटल पर हास्यात्मक उपाख्यानों का पर्याय बन कर रह गई थीं। घोटाला प्रसाद अपना नाम ऐसे असफल नेताओं की सूची में लिखवाने को कदापि तैयार

> *मनोनीत प्रधानमंत्री, घोटाला प्रसाद देश में वर्षों से फैली जड़ता से जनता को मुक्त करा पाएंगे? क्या वे सचमुच देश को ऐसा प्रजातंत्र दे पाएंगे जिसमें सरकार वे काम करेगी जिनसे जनता का वास्तविक हित होगा?*

नहीं थे। उन्होंने इस समस्या पर लम्बे समय तक विचार करने और अनेक योग्य व्यवस्थापकों से परामर्श करने के बाद एक क्रान्तिकारी योजना बनाई थी। उस योजना के अनुसार भ्रष्टाचार उन्मूलन का एकमात्र उपाय थाः उसका पर्दाफाश करना। अपने सनसनीखेज भाषण में घोटाला प्रसाद ने जनता को ललकारा कि वे विचार करें कि भ्रष्टाचार हमारे समाज में क्यों पनप रहा है। आखिर समाज में भ्रष्टाचार है क्यों? अपने ही प्रश्न का स्वयं ही उत्तर देते हुए उन्होंने कहा : भ्रष्टाचार के विराट वृक्ष की जड़ें सरकारी जटिल नियमों की ओट में पोषण पाती हैं। ये नियम महत्वाकांक्षी व्यक्तियों की

प्रगति में कदम-कदम पर बाधा डालते हैं। ऐसे व्यक्ति जहां भी नजर उठाते हैं, उन्हें नियमों की ऊंची दीवारें दिखाई देती हैं। वे स्वयं को नियमों की भूलभुलैया में गुमराह हुआ पाते हैं। जाल में फंसी मछली की तरह वे नियमों के बन्धन से छुटकारा पाने के लिए व्याकुल हो जाते हैं। वे पाते हैं कि वे जो कुछ भी करना चाहते हैं, वह किसी-न-किसी सरकारी नियम के विरुद्ध है। ऐसी परिस्थिति में जकड़ा हुआ एक इंसान क्या करे? बेबस, लाचार लोग तब उन भ्रष्ट अधिकारियों का मुंह निहारते हैं, जो उन्हें नियमों के चक्रव्यूह से बाहर निकलने में सहायता करे। इसके लिए लोग सरकारी अधिकारियों को मुंह-मांगी कीमत देने को विवश हो जाते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि जो नियम अच्छी व्यवस्था के लिए बनाए गए थे, वे ही नियम जनता के शोषण का माध्यम बन गए हैं। और यह तो अधिकांश लोग अपने अनुभव से जानते हैं कि जब कोई एक बार इन अधिकारियों के चंगुल में आ जाता है, वह उनकी पकड़ से बाहर नहीं जा सकता, भले ही वह कितना भी चिल्लाए या छटपटाए।

इस समय सरकारी नियम जौंक की तरह जनता का खून चूसने का माध्यम बन गए हैं। हे देशवासियो, आज मैं शपथ लेता हूं कि जब तक आपके गलों में बंधे इन असहनीय नियमों से आपको मुक्ति नहीं दिला दूंगा, तब तक मैं चैन की सांस नहीं लूंगा। मेरी सरकार केवल एक नीति अपनाएगी, किसी भी व्यक्ति के पीछे जितनी आवाज, उसके उतने ही अधिकार।

वह भाषण नीति का घोषणा-पत्र था। उसमें व्याख्या के लिए स्थान नहीं था। परन्तु लोगों को उसकी अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी; वह शीघ्र ही प्रकट हो गई। नई नीति कि अनुसार, उदाहरण के रूप में, यदि कोई आवेदक अपने आवेदन-पत्र के साथ नगरपालिका के खजाने में एक लाख रुपए जमा कराने की घोषणा करे और उसकी वह राशि अन्य प्रत्याशियों द्वारा सुझाई गई राशि से अधिक हो, तो उसे उस नगरपालिका के क्षेत्र के सभी विद्यालयों में पुस्तकें बेचने का एकाधिकार प्राप्त हो जाएगा। इसी तरह यदि किसी गांव का सरपंच दो सौ मतदाताओं के हस्ताक्षर सहित आवेदन-पत्र भेजे, तो उसके गांव से सड़क निकालने की योजना पर पूरी गंभीरता से विचार किया जाएगा। और यदि आवेदन-पत्र के साथ पांच लाख रुपया भी क्षेत्रीय विकास आयोग को भेजी जाए, तो सड़क-निर्माण के विरुद्ध समस्त याचिकाएं रद्द कर दी जाएंगी।

सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार नियमों को शिथिल करने की एक नई प्रक्रिया तुरन्त लागू की जाने वाली थी। इस क्रान्तिकारी नीति को स्पष्ट करने के लिए नमूने के रूप में अनेक उदाहरण दिए गए थे, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

> हे देशवासियो, आज मैं शपथ लेता हूं कि जब तक आपके गलों में बंधे इन असहनीय नियमों से आपको मुक्ति नहीं दिला दूंगा, तब तक मैं चैन की सांस नहीं लूंगा।

- पांच लाख रुपए गैस निगम को भेंट करने वाले व्यक्ति को अपने चुने हुए क्षेत्र में गैस वितरण करने का अधिकार उसी प्रकार प्राप्त होगा, जैसे दस लाख रुपए की भेंट पेट्रोल स्टेशन खोलने की अनुमति प्राप्त करा सकेगी।

- बीस लाख रुपए से कोई भी व्यक्ति अपनी पसन्द के स्थान पर कोई भी लघु उद्योग चालू करने का अधिकारी होगा। पचास लाख रुपए की राशि मध्य वर्ग के उद्योग और एक करोड़ रुपए की राशि भारी उद्योग शुरू करने के लिए पर्याप्त होगी।

- विदेशी व्यापार का द्वार मात्र दो करोड़ रुपए से खोला जा सकेगा, जो अर्पित की गई धनराशि के समानुपात में बढ़कर किसी भी विदेशी बाजार में भारत का प्रतिनिधित्व करने का एकाधिकार प्राप्त कराने की क्षमता रखेगा।

घोटाला प्रसाद की नई खुली नीति व्यवसाय में सुविधाएं दिलाने या जनकल्याण के कार्यों आदि तक ही सीमित नहीं थी, अपितु उसका दखल राजनैतिक गतिविधियों में भी होना था। उदाहरण के रूप में जहां एक हजार मतदाताओं के हस्ताक्षर के आधार पर कोई भी व्यक्ति एक छोटे नगर की किसी भी पार्टी के आंतरिक चुनावों में अपना प्रतिनिधि

नियुक्त कर सकता था, वहां राष्ट्रीय स्तर पर अपना प्रतिनिधि बैठाने के लिए बीस हजार हस्ताक्षर आवश्यक थे। यहां तक कि पचास हजार हस्ताक्षरों द्वारा किसी भी पार्टी के किसी भी सदस्य को दोबारा चुनाव लड़ने के लिए चुनौती दी जा सकती थी।

स्पष्टतः घोटाला प्रसादीय योजना बड़ी क्रान्तिकारी थी जिसका प्रभाव जन-जीवन के हर पक्ष पर पड़ना था। समाज के अति निर्बल और असंगठित वर्ग से लेकर शक्तिवान और सुसंगठित लोगों तक, कोई भी उस योजना के प्रभाव से बच नहीं सकता था। योजना पर व्यापक रूप से चर्चाएं हुईं। जनता की मांग के कारण रेडियो और दूरदर्शन पर पूर्व-घोषित कार्यक्रम रद्द करके घोटाला प्रसादीय योजना पर विस्तृत वाद-विवाद प्रसारित किए गए। समाचार-पत्रों के लिए तो मानो और कोई विषय सूझ ही नहीं पड़ता हो, हर कहीं घोटाला प्रसाद और उनकी नियमों से छुटकारी दिलाने की योजनाएं छा गई थीं। सुर्खियां, विश्लेषण, विवेचन और सम्पादकीय। चन्द गिने-चुने मतवालों को छोड़कर सभी सम्पादकों ने घोटाला प्रसादीय योजना की तारीफ के पुल बांध दिए थे। यद्यपि नए प्रधानमंत्री की तारीफ के आधार पर जीवन-वृत्ति में वृद्धि या उन्नति से सम्बन्धित कोई धारा योजना के अंतर्गत नहीं थी, परन्तु कोई भी सम्पादक राष्ट्रनेता की दिव्यदृष्टि के वर्णन की होड़ में पीछे नहीं रहना दीख पड़ता था। कुछ धुरंधरों ने लिखा कि वह योजना प्रशासन प्रणाली में ऐसी क्रान्ति लाएगी जो वर्षों की अव्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकेगी। अधिकांश सम्पादकीयों के अनुसार देश में एक ऐसा नया प्रभात आने वाला था जिसकी किरणें असंख्य लोगों को नियमों के घने कोहरे से मुक्ति दिला सकेंगी।

राष्ट्र को अपनी मूलभूत योजना प्रस्तुत करने के बाद जब घोटाला प्रसाद अपने कार्यालय में पहुंचे, तो उनकी मेज पर प्रमुख समाचार-पत्रों और दूरदर्शन पर हुए कार्यक्रमों में उनकी योजना पर की गई टीका-टिप्पणी की एक विस्तृत रिपोर्ट रखी थी, जिसे पढ़कर वे आत्मविभोर हो उठे। एक अनोखा सुख था वह, जो वर्णनातीत था। उस आनन्द-सरिता में गोते खाता उनका मन अतीत की गहराइयों में डूबे किशोरावस्था के क्षणों में जा पहुंचा। धीरे-धीरे यादें ताजी होने लगीं। उनमें से सबसे पहली स्मृति थी हाई स्कूल परीक्षा की समाप्ति पर हुए अपने पिता से वार्तालाप की। किस तरह वे दुबकते-झिझकते अपने पिता के पास पहुंचे थे सहायता मांगने के लिए। किस तरह उन्होंने अपने पिता को बताया था कि यदि वे अंगरेजी में अंक बढ़वा दें, तो उनके पुत्र का एक वर्ष खराब होने से बच सकता था। उनके सामने अपने पिता का गुस्से से तमतमाता चेहरा आ खड़ा हुआ जिस पर अभी भी पढ़ा जा सकता था - क्या मजाल इस छोकरे की जो प्रधानाचार्य बनारसीदास से अनैतिक कार्य में सहयोग की मांग करे। आखिर बनारसीदास एक धार्मिक व्यक्ति थे। उनकी निष्पक्षता और ईमानदारी की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। वे किस तरह पूरे जीवन में अर्जित अपना यश एक नादान लड़के के कहने में आकर नष्ट कर सकते थे, भले ही वह स्वयं अपना ही पुत्र क्यों न हो। लेकिन घोटाला प्रसाद भी कच्ची गोली नहीं खेले थे। खूब गिड़गिड़ाए। खूब आंसू बहाए। और जब सारे रोने-धोने का कोई असर होता दिखाई नहीं दिया, तो एक नया हथियार उन्होंने फेंका - केवल इस बार काम करा दीजिए। भविष्य में खूब मेहनत करूंगा और आपको कभी भी शिकायत को मौका न आने दूंगा।

बेचारे बनारसीदास एक विचित्र दुविधा में पड़ गए थे। एक ओर थे उनके जीवन-सिद्धान्त और दूसरी ओर था रोता-तड़पता, सहायता मांगता उनका पुत्र। जब बच्चा गलती मानकर उसका निराकरण करने का वचन दे रहा हो, तो उसकी सहायता करना भी तो एक पिता का कर्तव्य हो जाता है। एक विषय में अपने पुत्र के अंक बढ़वा देना बनारसीदास के लिए कोई असाध्य कार्य नहीं था। दुखी मन से ही सही, परन्तु जो वचन उन्होंने अपने पुत्र को दिया, उसे पूरा कर ही दिया। अपने इस कृत्य पर उन्हें गर्व तो नहीं था, परन्तु उसे सन्तान-प्रेमवश स्वीकार अवश्य कर लिया। लेकिन परीक्षा-परिणाम ने जो रहस्य खोला, वह उनके लिए असहनीय हो गया। उनका पुत्र सभी विषयों में अनुत्तीर्ण रहा था, सिवाए अंगरेजी के। उन्होंने अपना माथा पीट लिया - 'बेटे, तुमने मेरे माथे पर कालिख पोत दी है। मैं किसी को मुंह दिखाने लायक नहीं रहा अब।'

यादें थीं कि घुमड़-घुमड़कर प्रकट होती जा रही थीं। हाईस्कूल परीक्षा में दोबारा बैठे, पूरी तैयारी के साथ। एक बार गलती हुई, सो हुई। दोबारा नहीं। इस बार लगाम पिता के हाथ में नहीं, पुत्र के हाथ में थी। परीक्षा होने से पहले ही पूरी जानकारी इकट्ठा थी। किस विषय की कापियां जांच के

घोटाला प्रसादीय योजना बड़ी क्रान्तिकारी थी जिसका प्रभाव जन-जीवन के हर पक्ष पर पड़ना था। समाज के अति निर्बल और असंगठित वर्ग से लेकर शक्तिवान और सुसंगठित लोगों तक, कोई भी उस योजना के प्रभाव से बच नहीं सकता था। योजना पर व्यापक रूप से चर्चाएं हुईं।

लिए किस अध्यापक को पास भेजी जाने वाली हैं। परीक्षाएं समाप्त होते ही उन सबसे एक-एक करके सम्पर्क किया गया। पिता का हवाला दिया गया और प्रत्येक अध्यापक से कहा गया कि अन्य सभी परचे तो ठीक हैं, केवल आपके विषय में कमी हो गई है। वैसे तो पिताजी स्वयं आने वाले थे, लेकिन मैंने ही उनसे कहा कि आपका तो नाम ही काफी है; इतनी-सी छोटी बात के लिए वे आते अच्छे भी तो नहीं लगते।

स्वभावतः परीक्षा-परिणाम मनोवांछित ही रहा। विश्वविद्यालय की स्नातक परीक्षा का समय आते-आते उस कार्य प्रणाली में काफी सुधार कर लिए गए थे। परीक्षा आरम्भ होने के ठीक पन्द्रह मिनट बाद घोटाला प्रसाद पानी पीने के लिए आज्ञा मांगकर कक्ष से बाहर जाते, जहां एक स्नात्कोत्तर छात्र मित्र उनकी प्रतीक्षा में तैनात होता जिसे एक छोटा-सा परचा पकड़ाकर घोटाला प्रसाद परीक्षा-कक्ष में लौट जाते। पूरे एक घंटे बाद फिर प्यास लगने का नाटक करके जब प्याऊ पर पहुंचते, तो उनका मित्र वहां प्रतीक्षारत मिलता। कागजों की प्राप्ति और फिर जुटकर लिखाई। सभी कुछ कितना सहज था।

कानून की परीक्षा के समय तो कार्य-प्रणाली पूरी तरह परिमार्जित हो गई थी, जिसके अंतर्गत खाली कापियां पहले से ही जुटाकर घर पर रख ली गई थीं। वहीं मित्रों ने बैठकर प्रश्नों के उत्तर तैयार किए और पहुंचा दिए घोटाला प्रसाद के पास परीक्षा कक्ष में। वह शायद पहले विद्यार्थी थे जो अपने हाथ से एक भी शब्द लिखे बिना ही कानून के स्नातक बन गए थे।

शिक्षा जगत से बाहर निकल कर जब वकालती जीवन के अखाड़े में उतरे, तो घोटाला प्रसाद का मन उमंगों से भरा हुआ था। एक अजीब-सी खुमारी थी। सारे संसार जीतने के सपने थे। सभी को न्याय दिलाने की तड़प थी। जीवन के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचने की महत्वाकांक्षाएं थीं। मात्र एक ही कमी थी - मुवक्किल। किसी ने उनका नाम तक नहीं सुना था। सवेरे से लेकर शाम तक दफ्तर में बैठते, लेकिन कोई भूल से भी उन्हें अपना मुकदमा लड़ने के लिए आमंत्रित न करता। जो इक्का-दुक्का मामले उनके पास किसी तरह आते भी, वे इतने दुर्बल होते कि उन जैसा नौसीखिया तो क्या, शायद कोई महान्यायवादी भी उन्हें न जीत पाता। ऐसे हरेक मुकदमे में मिली हार उन्हें अपने व्यक्तित्व की कमजोरी का एहसास दिलाती दीखती, जिसकी पीड़ा से उनकी आत्मा बेचैन हो उठती। मशवरा लेकर अपना मामला किसी दूसरे वकील के हाथ अपना मामला सौंपने वाला हर मुवक्किल उनका परित्याग करता अनुभव होता। आर्थिक कठिनाइयां बढ़ने के साथ ही मन में आत्मग्लानि का भाव पनपने लगा था। कटुता

"बोतल पाने का डकारनाथ से अधिक उपयुक्त अधिकारी और कौन हो सकता था, परन्तु समस्या यह थी कि उन्हें बोतल भेंट करना तो दूर घोटाला प्रसाद को उनसे नजर मिलाने तक का साहस नहीं था।"

महत्वाकांक्षाओं का स्थान लेती जा रही थी। जीवन एक असहनीय बोझ बन गया था।

यह मात्र संयोग ही था कि छात्रावस्था के एक मित्र कोलम्बो योजना के अंतर्गत जन-कल्याण अधिकारियों की कार्यक्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से लन्दन में हुए एक प्रशिक्षण शिविर से भारत लौटे थे। वह जब घोटाला प्रसाद से मिलने आए, तो तटकर-मुक्त दुकान से खरीदी स्कॉच व्हिस्की की एक बोतल भी साथ ले आए। घोटाला प्रसाद ने बोतल रख तो ली, परन्तु बड़े असमंजस में पड़ गए। करें, तो क्या बोतल का! पीते-पिलाते तो थे नहीं। फिर ऐसी चीज को घर में रखने में अनेक प्रकार की कठिनाइयां हो सकती थीं। ईश्वर न करे, यदि प्रधानाचार्य बनारसीदास देख लें, तो तूफान ही खड़ा कर दें। ऐसी बला से मुक्ति पाने का सबसे सरल उपाय यह था कि उस बोतल को किसी उपयुक्त व्यक्ति को भेंट कर दिया जाए। उन दिनों उनके नगर में डकारनाथ आवास अधिकारी के रूप में नियुक्त थे। बड़ा दबदबा था उनका। उनके बारे में वकीलों के क्षेत्रों में अनेक अफवाहें उड़ा करती थीं, जिनकी सच्चाई की पुष्टि कभी किसी व्यक्ति ने पेश नहीं की थी। अलबत्ता दो बातें सभी मानते थे। पहली तो यह कि डकारनाथ ऐसे बैठकबाज व्यक्ति थे जो ऐरे-गैरे-नत्थूखैरों को फटकने भी नहीं देते थे, और दूसरी यह कि जो उनके दरबार में एक बार स्वीकृति पा जाता, उसके समस्त संकट दूर हो जाते थे।

बोतल पाने का डकारनाथ से अधिक उपयुक्त अधिकारी और कौन हो सकता था, परन्तु समस्या यह थी कि उन्हें बोतल भेंट करना तो दूर घोटाला प्रसाद को उनसे नजर मिलाने तक का साहस नहीं था। न जाने क्या कह दें! कितना अपमान कर दें!

अनेक दिनों तक हृदय मंथन चला। अनेक योजनाएं डकारनाथजी से मिलने वाली डपट की संभावनाओं की सचाई के प्रकाश में ओझल हो गईं। आखिर एक दिन बहुत साहस करके वे डकारनाथ के कार्यालय में जा पहुंचे। अपनी

फटफटिया को खड़ा कर ही रहे थे, कि अपने मौहल्ले में रहनेवाला एक व्यक्ति, जोडूदास दिखाई पड़ा। हालत कितनी भी खस्ता हो, आखिर थे तो वकील साहब! जोडूदास जैसे किसी व्यक्ति को मुंह लगाना उनकी शान के विरुद्ध था। लेकिन उस दिन न जाने क्यों उसकी ओर देखकर बोले : 'भाई, जोडूदास आप यहां क्या कर रहे हैं?'

'वकील साहब, मैं तो यहां काम करता हूं। साहब का चपरासी हूं।'

'डकारनाथजी के यहां?'

'जी, हां।'

'अच्छा! लो बताओ! मैं भी कितना नादान हूं! बगल में चुहिया और शहर में ढिंढोरा! तुम्हारे साहब से मिलना था।'

'लीजिए यह कौन-सी बड़ी बात है। अभी मिलवा देता हूं।'

घोटाला प्रसाद को अपने सौभाग्य पर विश्वास नहीं हुआ। 'नहीं, आज नहीं। फिर कभी। — भाई मेरे, इतने निकट रहते हो। कभी दीखते ही नहीं। कभी घर आओ। तब बताऊंगा।'

जोडूदास को सवेरे ही अपने द्वार पर उपस्थित पाकर उनकी बाछें खिल गईं। 'भाई, कोई विशेष काम नहीं था। बस होली के मौके पर यह नजराना तुम्हारे साहब को पहुंचाना था।' घोटाला प्रसाद ने उपहार दिए जाने वाले कागज में करीने से लिपटी व्हिस्की की बोतल पकड़ा दी। साथ में था पचास रुपए का नोट। 'यह है तुम्हारा इनाम।'

वकील साहब, इसकी क्या जरूरत थी! मौहल्लेदार होकर क्या मैं इतना भी काम नहीं कर सकता! जोडूदास ने बोतल थामकर खींसे निकाले।

वह तो ठीक है, लेकिन इनाम तो जायज है। घोटाला प्रसाद ने नोट उसकी जेब में ठूंस दिया।

घोटाला प्रसाद को आज तक याद है; लगभग एक महीने बाद बुलावा आ गया था। हमारे बेटे का जन्मदिन है आगामी रविवार को। कुछ मित्रों को बुलाया है। आप भी आइए।

घोटाला प्रसाद ने तुरन्त उन मित्रों से सम्पर्क किया जो या तो स्वयं विदेशों में रह चुके थे या जिनका सम्पर्क प्रवासी मित्रों या सम्बन्धियों से था। न जाने किस प्रकार स्कॉच व्हिस्की की छह बोतलें जुटाईं और उनका पुलन्दा बनाकर जा पहुंचे जन्मदिन के आयोजन में। वहां पहुंचे, तो आंखें खुली रह गईं। एक छोटे बच्चे के जन्मदिन पर इतने बड़े आयोजन की उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी। कोठी के सामनेवाले लॉन में एक बड़ा शामियाना लगा था जो मेहमानों से खचाखच भरा हुआ था।

शामियाने के शीर्षभाग में एक बड़ी मेज पर एक बड़ी केक सजी हुई थी। मेज के निकट मित्रों और हितैषियों द्वारा दिए गए उपहारों का एक पहाड़ खड़ा था। वह सब कल्पनातीत था। घोटाला प्रसाद को सब कुछ बड़ा अटपटा लगा। झिझक के मारे वह एक कोने में जाकर खड़े हो गए। तभी डकारनाथ बड़ी आत्मीयता से आकर बोले : 'अरे! वकील साहब, वहां अकेले क्यों खड़े हैं। इसे अपना ही घर समझिए। पार्टी का आनन्द लीजिए।' उस आत्मीयता की गरमी में उनकी सारी झिझक लोप हो गई। वह मेहमानों से ऐसे मिलने लगे, जैसे उन्हें वर्षों से जानते हों। जल्द ही वह घड़ी आ पहुंची जिसका सभी, विशेषतः बच्चे, बड़ी अधीरता से प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीमती नाथ के आग्रह पर सभी लोग केकवाली मेज के चारों ओर जाकर खड़े हो गए। किलकारियां मारते, अपने मित्रों से घिरे, डकारनाथ के दस वर्षीय पुत्र ने जब केक काटा, तो सारा शामियाना 'हैपी बर्थडे टू यू' की जादुई तरंग में बह गया। घोटाला प्रसाद बच्चों की निश्छलता में इतने डूबे कि उन्हें ध्यान ही नहीं रहा कि पूरे शामियाने में उनके अतिरिक्त और कोई वयस्क नहीं बचा था। तभी जोडूदास हाजिर हुआ। वकील साहब, आपको साहब ने कोठी के अन्दर आने को कहा है।

वह दुबकते-सुकड़ते जोडूदास के पीछे यूं चले जैसे कोई आज्ञाकारी सेवक अपना कर्तव्य निभा रहा हो। बैठक में एक दूसरी ही दुनिया थी। नगर के बड़े-बड़े अधिकारी वहां जमा हो गए लगते थे। पुलिस के उप-अधीक्षक बिना वर्दी के एक बढ़िया सूट में विराजमान थे। जिलाधीश महोदय थे। जिला समाज कल्याण अधिकारी वहां शोभा बढ़ा रहे थे। विकास अधिकारी सपत्नीक पधारे थे। गायिका मिस सरगम चहचहा रही थीं। खान-पान पूरे जोरों पर था। यद्यपि सेवा के लिए परिवेषकों का प्रबन्ध था, परन्तु डकारनाथ स्वयं अतिथियों की अगवानी कर रहे थे। घोटाला प्रसाद को चाय का प्याला पकड़े देखकर हैरानी से बोले : 'चाय! कुछ और लीजिए व्हिस्की या वौडका।'

'जी, मैं तो पीता नहीं।'

'वाह, वकील साहब!' डकारनाथ ने ठटाका लगाया। 'खुद पीते नहीं, पर दूसरों को खूब पिलाते हैं।'

> *मेज के निकट मित्रों और हितैषियों द्वारा दिए गए उपहारों का एक पहाड़ खड़ा था। वह सब कल्पनातीत था। घोटाला प्रसाद को सब कुछ बड़ा अटपटा लगा। झिझक के मारे वह एक कोने में जाकर खड़े हो गए।*

'जी, ऐसा ही समझ लीजिए।' घोटाला प्रसाद के गाल तमतमा गए थे; मानो चोरी करते हुए पकड़े गए हों। बड़ी विचित्र स्थिति पैदा हो गई थी। मेहमान अटपटा अनुभव करे, तो मेजबान की भी तो इज्जत घटती है। डकारनाथ स्थिति को संभालने में बड़े कुशल थे। उन्होंने तुरन्त विषय बदला। 'आप हमारे महकमे में वकालत क्यों नहीं करते ?'

'जी।' घोटाला प्रसाद सटपटाए। कभी अवसर ही नहीं मिला।

'यह कमी तो अब दूर करनी ही पड़ेगी।' डकारनाथ ने कहा। 'हमारे एक मित्र हैं। उनके एक मकान में एक बुढ़िया पिछले तीस साल से बैठी है। दो सौ रुपए महीने में घर संभाला हुआ है। न घर खाली करती है, न किराया बढ़ाती है। — अब तक तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, परन्तु अब उनका बेटा जवान हो गया है; उसके रहने का प्रबन्ध करना आवश्यक हो गया है। —यदि कहें, तो उनसे कहूं कि आपसे सम्पर्क कर लें।'

सत्तर वर्ष की एक विधवा से मकान खाली कराना कोई सरल काम नहीं था। फिर भी घोटाला प्रसाद ने मामला न केवल लिया बल्कि उस पर खूब मेहनत भी की। पेशी के समय उन्होंने एक ऐसे युवक की कुण्ठामय करुण गाथा कचहरी के सम्मुख रखी जो अपना घर होते हुए भी अपना घरबार बसाने के बदले माता-पिता के साथ रहने को विवश था। काश! उस बूढ़ी स्त्री से मकान खाली करा कर उसे स्वयं अपने घर में जाकर रहने की उसकी तीव्र इच्छा, जो उसका मानवीय अधिकार था, पूरी करने में अदालत उसकी सहायता करे।

यह पूर्ण अधिकार से नहीं कहा जा सकता कि जीत उनकी बेजवाब कानूनी बहस के फलस्वरूप मिली थी या डकारनाथ को अपने मित्र और उसके पुत्र को मानसिक कष्ट से छुटकारा दिलाने के उद्देश्य से परदे के पीछे से पहुंचाई सहायता का प्रभाव था। यह तो सर्वथा सत्य था कि अदालत ने फैसला घोटाला प्रसाद के मुवक्किल के पक्ष में सुनाया था। पिछले बीस वर्षों में जो बड़े-बड़े धुरन्धर नहीं कर पाए थे बाकायदा तय हुए किराए को बिना किसी अन्तराल के देने वाले किराएदार को, वह भी ऐसा जिसका कोई देखनेवाला न हो और जो उस मकान से बाहर कर दिए जाने पर बेघर हो जाए, घोटाला प्रसाद सड़क पर निकाल फिंकवाने में सफल हो गए थे। उस जीत से सारे शहर में तहलका मच गया। उनकी ख्याति दूर-दूर तक जा पहुंची। आवास के विकट मामलों के लिए एक ही वकील है घोटाला प्रसाद। कैसी भी दयनीय परिस्थियां हों, कितने भी लम्बे काल से किराएदार मकान में रह रहा हो घोटाला प्रसाद को अपना वकील बनाइए और किराएदार का सामान सड़क पर फिंकवाकर वहां बढ़ी हुई दरों पर नया किराएदार बिठाइए या पूरी इमारत को गिराकर उसके स्थान पर शानदार फ्लैट बनवाइए। आपको कोई रोकने-टोकनेवाला नहीं था।

वकालत से राजनीति की दुनिया में प्रवेश दिलाने में डकारनाथ का परोक्ष रूप से हाथ रहा था। हुआ यह कि पिछले संसदीय चुनाव के समय तत्कालीन पदस्थ सांसद कल्याणसिंह का पलड़ा बड़ा हल्का दिखाई दे रहा था। उनके चुनाव अभियान को चेतना देने के उद्देश्य से एक सभा बुलाई गई थी। लोग अनेक प्रकार की कठिनाइयों का बखान कर रहे थे। वहां उपस्थित एक भी पार्टी-कार्यकर्ता न तो कोई व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत कर रहा था, और न ही कोई आशाजनक समाचार दे पा रहा था। निराशा के अंधकार में डूबी उस सभा के सामने डकारनाथ मानो आशा की एक किरण लेकर उतरे, जब उन्होंने एकाएक खड़े होकर सभा को सम्बोधित किया : 'मित्रों, मैंने इस सभा में आने का निश्चय केवल इस कारण किया है कि मुझे इस पार्टी आत्महित दल के भविष्य में पूरा विश्वास है। इस दल के पास सब कुछ है। अच्छे लोग हैं। अच्छी नीतियां हैं। उन नीतियों को जनता के सामने रखने के लिए आवश्यक धन और अन्य साधन हैं।' एक क्षण के अंतराल के बाद उन्होंने अपना गला खंखारा। अपनी बात जारी रखते हुए उन्होंने कहा। बस एक कमी है - एक अच्छे अभियान संयोजक की। आप एक अच्छा संयोजक चुन लीजिए, पार्टी को सफलता अवश्य मिलेगी। मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं, न केवल इस सीट के लिए बल्कि इस बात के लिए भी कि चुनावों के बाद आपकी पार्टी विरोधी दल से उठकर सरकार बनाने में भी समर्थ हो सके।

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच बहुत से लोग खड़े होकर बोलने लगे। पहले तो किसी की समझ में यह नहीं आया, कि हो क्या रहा है। परन्तु जब डकारनाथ के बार-बार आग्रह करने पर सभा में थोड़ी व्यवस्था आई, तो अनेक लोग एक साथ कहने लगे, हम आपको अपना अभियान संयोजक नियुक्त करने को तैयार हैं।

घोटाला प्रसाद ने मामला न केवल लिया बल्कि उस पर खूब मेहनत भी की। पेशी के समय उन्होंने एक ऐसे युवक की कुण्ठामय करुण गाथा कचहरी के सम्मुख रखी जो अपना घर होते हुए भी अपना घरबार बसाने के बदले माता-पिता के साथ रहने को विवश था।

उनकी मेज पर ताजा समस्याओं की एक मिसाल रखी थी, जिससे स्पष्ट था कि वह कोई स्वप्न नहीं, एक वास्तविकता थी। देश भी उस वास्तविकता को जितनी जल्द समझ ले, उतना ही उसके हित में होगा। देश के इतिहास में एक नया अध्याय लिखा जा रहा था।

डकारनाथ ने उन्हें रोका। 'मित्रों, आप मुझे इस पद के योग्य समझते हैं, यह आपकी सहृदयता है। इसके लिए मैं आप सबका आभारी हूं। लेकिन आप जानते हैं कि मैं एक सरकारी कर्मचारी हूं। — मैं राजनीति में सक्रिय भाग नहीं ले सकता। परन्तु एक काम मैं अवश्य कर सकता हूं। मैं आपको एक ऐसे व्यक्ति का नाम सुझा सकता हूं, जो आपके चुनाव अभियान को सफल बनाने की क्षमता रखता है।'

सभा एक ही मांग से गूंज उठी। कृपया सुझाइए।

अपना नाम अपने क्षेत्र के संसदीय चुनाव में पार्टी के अभियान संयोजक के पद के सुझाव पर घोटाला प्रसाद जितने आश्चर्यचकित हुए थे, उतने ही उस सभा में बैठे अन्य सब लोग भी। डकारनाथ ने उन्हें चुनाव-अभियान का भार उठाने योग्य समझा था, तो वह अवश्य ही उसके योग्य होंगे। इसमें शंका का प्रश्न उठ ही नहीं सकता था। घोटाला प्रसाद को सर्वसम्मति से अभियान-संयोजक का पद सौंप दिया गया। अपने भाग्य को सराहते, सभी के प्रति कृतज्ञता, विशेष रूप से डकारनाथजी के प्रति आजन्म ऋणी रहने की शपथ लेते, वह जुट गए अपने नए पद पर। शीघ्र ही उस संसदीय चुनाव क्षेत्र के लिए आत्महित दल की नई रणनीति उभरकर आई। इसके अनुसार दो-तीन बातों पर विशेष ध्यान दिया गया। प्रथम तो यह कि क्योंकि जाति से कल्याणसिंह ठाकुर थे, इसलिए इस बात पर अधिक से अधिक जोर दिया जाए कि उस चुनाव क्षेत्र के सभी ठाकुरों का कर्तव्य है कि वे अपनी जाति के उम्मीदवार को ही अपना मत दें। दूसरी यह कि जिन क्षेत्रों में अभी तक महाविद्यालय नहीं हैं, वहां पार्टी वचन दे कि वहां पार्टी महाविद्यालय स्थापित कराएगी। जब कुछ लोगों ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया कि विरोधी दल की किसी पार्टी के लिए वह कर पाना संभव नहीं है, तो घोटाला प्रसाद ने उन्हें याद दिलाया कि उनकी पार्टी हमेशा विरोधी दल का भाग तो नहीं बनी रहेगी। और जब सत्ता हाथ में होगी, तो तब नई परिस्थिति होगी। नई परिस्थिति में हम नई नीति बना लेंगे। तीसरी यह कि चुनावों के दौरान दलितों, निर्धन वर्ग के कुछ चुने हुए लोगों को यथा संभव, सीधी आर्थिक सहायता दी जाए और उसका भरपूर प्रचार किया जाए।

घोटाला प्रसाद इस तथ्य से पूरी तरह परिचित थे कि कुछ वार्ड ऐसे थे, जहां सत्ताधारी दल का प्रभाव अधिक था। उन्होंने तमाम चुनाव अधिकारियों की सूची तैयार की और उनमें से आत्महितकारी दल की नीतियों से सहानुभूति रखनेवालों को छांटा। तब स्थानीय चुनाव आयुक्त के कार्यालय में कार्यरत कुछ मित्रों की सहायता से उन अधिकारियों की नियुक्ति सत्ताधारी पार्टी से सहानुभूतिवाले वार्डों में कराई। इन अधिकारियों के कर्तव्यों में निरक्षरों, नेत्रहीनों आदि मतदाताओं की सहायता करना भी था। अधिकारियों की यह सहायता कल्याणसिंह को विजय दिलाने में बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई।

इसे संयोग कहिए या नियति कि चुनावों में विजय पाने के कुछ समय बाद ही कल्याणसिंह अचानक दिल का दौरा पड़ने पर चल बसे। घोटाला प्रसाद ने उपचुनावों में आत्महितकारी दल की ओर से खड़े होकर न केवल आकस्मिक समस्या का निराकरण कर दिया, बल्कि शीघ्र ही संसद में अपने दल की स्थिति मजबूत कर दी। संसद में अपनी पार्टी का बहुमत बनाने के लिए उन्होंने क्या कुछ नहीं किया! देश के कोने-कोने में गए। अपने दल के सांसदों का मनोबल बढ़ाया। इसके साथ ही दूसरी पार्टियों के असंतुष्ट सांसदों से मेल-जोल भी बढ़ाया और उन्हें अपने दल में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित किया। इन प्रयत्नों में खुली चैकबुक नीति सर्वोपरि थी। यदि अफवाहों पर विश्वास करें, तो जब भी दूसरी पार्टी में असंतोष की रत्ती भर भी भनक पड़ती, घोटाला प्रसाद चैकबुक लेकर पहुंच जाते थे; परन्तु शायद वह उनके साथ अन्याय हो। अवश्य ही उनकी सफलता के पीछे उनका परिश्रम और निष्ठा महत्वपूर्ण रही होगी। अंततः जब अविश्वास प्रस्ताव को समय आया, तो सब कुछ तैयार था। सत्ताधारी दल के ही लगभग एक चौथाई सांसदों ने अपने ही दल के विरुद्ध मत देकर अपनी ही पार्टी का तख्ता पलट दिया। जनता ने जिन लोगों को सत्ता सौंपी थी, उन्होंने सत्ता घोटाला प्रसाद के हाथ सौंप दी। वह एक अकल्पनीय साजिश थी या नियति, कौन जाने?

एक क्षण के लिए उन्हें लगा कि अविश्वास प्रस्ताव में उनकी विजय मात्र एक स्वप्न थी। परन्तु तभी वरिष्ठ अधिकारियों का दल कर्तव्यपरायणतापूर्वक उनके सामने आ खड़ा हुआ। उनकी मेज पर ताजा समस्याओं की एक मिसाल रखी थी, जिससे स्पष्ट था कि वह कोई स्वप्न नहीं, एक वास्तविकता थी। देश भी उस वास्तविकता को जितनी जल्द समझ ले, उतना ही उसके हित में होगा। देश के इतिहास में एक नया अध्याय लिखा जा रहा था।■

प्रभुदयाल मिश्र
३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल म.प्र. ४६२०१६ ईमेलः prabhu.d.mishra@gmail.com

भारतीय समाज के युगान्तरकारी प्रहरी
महर्षि दयानन्द

डॉ. उमाशंकर नगाइच का पुनर्प्रकाशित 'महर्षि दयानन्द का समाज दर्शन' शोध प्रबंध महान् (A review of Dr Nagaich book on Maharshi Dayanand) मेधा पुरुष ऋषि दयानन्द सरस्वती के अमूल्य सामाजिक अवदान के साथ-साथ उनकी उस युगान्तरकारी प्रतिभा का भी प्रामाणिक उद्घाटन करता है जिसके योग के बिना भारतीय समाज न केवल दिशाहीन रहता, बल्कि वह अपनी अपूर्णता में ही आज शेष होता। इस महामानव के व्यक्तित्व की विराटता एक अर्थ में 'परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कताम्' के दैवी संकल्प को ही पूरा करती प्रतीत होती है। हमारे समाज और हमारे वर्तमान युग के इस जीवन्त सशक्त प्रहरी के प्रकट और परिपूर्ण जीवन दर्शन का साक्षात्कार प्रत्येक 'सामाजिक' के एक धर्म कर्तव्य से कम नहीं है। इस दायित्व का उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से स्मरण कराने के लिए डॉ. नगाइच निश्चित ही साधुवाद के पात्र हैं।

> महर्षि दयानन्द ऐसे महान् युग चेता थे जिन्होंने वेदों के विस्मृतप्राय ज्ञान को न केवल पुनर्प्रकाशित किया बल्कि सायण की परम्परा में पश्चिम के विद्वानों द्वारा इनके कर्मकाण्ड परक लौकिक भाष्य को भी विराम लगाया।

एक शोध प्रबंध अपनी संदर्भ साधना और दुष्क्रमिकता में बोझिल हो जाता है। डॉ. नगाइच के सुदीर्घ उद्धरण प्रायः इस आशंका को जहां-तहां उत्पन्न करते हैं। किन्तु किसी भी लेखन की प्रामाणिकता का संदर्भ सरोकार तो अपरिहार्य होता ही है, एक पाठक यह आश्वस्ति भी लेकर चलना चाहता है कि उससे विषय से संबंधित कोई महत्वपूर्ण तथ्य छूट नहीं रहा है। इस प्रकार का आश्वासन लेखक ने पूरी सिद्दत के साथ प्रस्तुत किया है। इसके लिए भी उनकी यह कृति प्रशंसनीय है।

महर्षि दयानन्द ऐसे महान् युग चेता थे जिन्होंने वेदों के विस्मृतप्राय ज्ञान को न केवल पुनर्प्रकाशित किया बल्कि सायण की परम्परा में पश्चिम के विद्वानों द्वारा इनके कर्मकाण्ड परक लौकिक भाष्य को भी विराम लगाया। स्वभाविक रूप से श्री अरविन्दो और मधुसूदन ओझा आदि कालान्तर में इनके गूढ़ रहस्यों के उद्घाटन की दिशा में प्रवृत्त हुए और वर्तमान में तो वेदों की वैज्ञानिकता विचारकों का जैसे एक आवश्यक उपादान ही हो गई है। आंतरिक तौर पर भी भारत के एक वर्ग की धर्मभीरुता में प्रायः परम्परा पोषक समाज की इतनी व्यापक चुनौतियों का सामना करते हुए शुद्ध ज्ञान और विज्ञान की उनके द्वारा प्रदान की गई दिशा सहस्राब्दियों का भी अतिक्रमण करते हुए अत्यंत दीर्घ दृष्टिपूर्ण है। आज भी इस तथ्य की कल्पना की जा सकती है कि भविष्य में जब कभी भी मनुष्य धर्म की संकीर्णताओं और ईश्वर को अपने दुराग्रहों से परे देखने की चेष्टा करेगा तो उसे ऐसा ही परमात्मा मिलेगा जो अपनी निरपेक्षता में सबका होगा। उस समय उसे सुगंध, दीपक अथवा किसी मानवीय चेष्टा से बचाने की जरूरत नहीं पड़ेगी क्योंकि उसकी प्रतिष्ठा स्वसाध्य और सर्वत्र ही है।

पुस्तक में यद्यपि महर्षि दयानन्द द्वारा संद्रष्ट भारतीय और मानव समाज विषयक दृष्टि बहुमुखी है, किन्तु यहां वर्ण व्यवस्था के संबंध में संक्षिप्त उल्लेख समीचीन प्रतीत होता है। ऋग्वेद से आरम्भ 'चतुर्वर्ण' के रूप में विज्ञात इस व्यवस्था पर लेखक ने पृष्ठ ८३ से लेकर १२६ अर्थात् ४३ पृष्ठों में विचार

किया है। अपनी व्याख्या के संपोषण में लेखक ने १०० संदर्भ ग्रन्थों का व्यापक आधार लिया है। स्वभावतः लेखक का निष्कर्ष यह है - 'इस वर्णन में कहीं भी ऊंच-नीच, छोटे-बड़े या स्पृश्य-अस्पृश्य का संबंध नहीं। मुख, बाहु, उरू और पांव- ये सभी एक ही शरीर के अंग और अपने-अपने स्थान पर सब ही समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। पांव के बिना गति असंभव है। इसलिए शरीर में जो स्थान पांवों का है, वही स्थान समाज में गति और प्रगति के आधार श्रमसाधक वर्ग का है।'(पृ.११६)

जन्म से ही कोई उच्च वर्ण का नहीं हो जाता, इसकी पुष्टि में लेखक ने अनेक उदाहरण देते हुए बताया है कि वशिष्ठ वेश्या, पाराशर चाण्डाली, वेदव्यास मल्लाह कन्या, मतंग

> *लेखक की भाषा विषय के अनुरूप परिनिष्ठित और सार संग्रही है। मुद्रण कार्य में भी, विशेषकर संस्कृत संदर्भों की शुद्धता पर आवश्यक ध्यान दिया गया है।*

और जाबाल शूद्र कुल में उत्पन्न होकर भी ऋषि हुए हैं। क्षत्रिय कुल के पृषध को हत्या के कारण शूद्र हो जाना पड़ा। क्षत्रिय विश्वामित्र ने तपस्या से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। इतरा नाम की दासी से उत्पन्न ऐतरेय महीदास शूद्र माता के पुत्र थे किन्तु वे ब्राह्मण ग्रन्थ के रचयिता बने। मतंग चाण्डाल कुल के होकर भी ऋषि बन गए। नागवर्गीय अर्बुद ने वैदिक सूक्तों को रचा। इसी तरह दीर्घतमा उशिज नामक दासी और कक्षीवान् इलूष नामक दासी से उत्पन्न हुए थे। असुर कुल की स्त्री से उत्पन्न त्वष्टा पुत्र विश्वरूप देवताओं के पुरोहित बने। कण्व पुत्र वत्स का जन्म भी असुर माता से हुआ। इत्यादि।

लेखक की भाषा विषय के अनुरूप परिनिष्ठित और सार संग्रही है। मुद्रण कार्य में भी, विशेषकर संस्कृत संदर्भों की शुद्धता पर आवश्यक ध्यान दिया गया है जो लेखक में आर्ष परम्परा के समर्थ संवहन का ही प्रकटीकरण है।■

पुस्तक : महर्षि दयानन्द का समाज दर्शन
लेखक : डॉ. उमाशंकर नगाइच
प्रकाशक : आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, नर्मदापुरम्
मूल्य : ३०० रुपये

विएना में हिंदी दिवस मना

विगत जनवरी माह में ऑस्ट्रिया की राजधानी विएना में हिंदी दिवस मनाया गया। इस अवसर पर विएना विश्वविद्यालय के आधुनिक दक्षिण एशियायी विभाग में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया गया। विभाग के प्राध्यापक की परिकल्पना और हिंदी भाषा के विद्यार्थियों की सक्रियता में प्रस्तुत इस कार्यक्रम को 'जीवन और स्त्री कल्पना' नाम दिया गया था।

कार्यक्रम का आरंभ मङ्गलाचरण नृत्य से हुआ। इसके बाद विद्यार्थियो ने बॉलिवुड फिल्मों के कुछ गाने प्रस्तुत किए। कार्यक्रम का प्रमुख आकर्षण जगदीश चन्द्र माथुर द्वारा लिखित एकाङ्की रीढ की हड्डी का अभिनय था। बी.ए. के पाँचवे सेमेस्टर में 'मैरिज एण्ड डिवोर्स इन हिंदी लिट्रेचर एण्ड सिनेमा' शीर्षक पर २०१२-१३ के शीतकालीन सत्र में अध्ययनरत विद्यार्थियों ने कक्षा में इस एकाङ्की का हिंदी से जर्मन में पूर्ण अनुवाद तैयार किया और नाटक का प्रदर्शन भी किया। यह अनुवाद, कार्यक्रम में दर्शकों को भी उपलब्ध कराया गया था। कार्यक्रम में नेपाली कक्षा के विद्यार्थियों ने भी थारू समुदाय की एक नेपाली लडकी की कहानी पर आधारित जर्मन किताब 'स्क्लावेन किंड' (बाल श्रमिक) का संक्षिप्त नेपाली अनुवाद प्रस्तुत किया था। कार्यक्रम का समापन बॉलिवुड फिल्म 'कभी खुशी कभी गम' का गाना 'बोल चूडियाँ बोल कङ्गना' पर नृत्य से हुआ। नृत्य की कोरियोग्राफी और नृत्य के लिए पोशाक भी विद्यार्थी स्वयं ने तैयार किया था। विद्यार्थियों द्वारा कार्यक्रम का उद्घोषण भी हिंदी और जर्मन दोनों भाषाओं मे किया गया था।

कार्यक्रम में विभाग के प्रोफेसर मार्टिन गेन्जले ने स्वागत मन्तव्य और अध्यापिका अलका आत्रेय चूडाल ने धन्यवाद ज्ञापन किया। कार्यक्रम में दर्शकों की आशातीत सहभागिता थी।■

प्रस्तुति : अलका आत्रेय चूडाल

आपकी बात

'अपनी बात' में प्रोफेसर मॉरी वार्ज की जीवनी एक साँस में पढ़ कर दिल व दिमाग झिंझोड़ उठे। पूर्वजों ने सच ही कहा है 'स्वस्थ जीवन भगवान का सबसे बड़ा आशीर्वाद है।' उनके ये कथन फिर से याद करके प्रो. मॉरी की मानसिक ताकत के आगे नतमस्तक होकर उनकी मौत की छाया में जीवित रहते हुए लिखी गयी छोटी-छोटी दार्शनिक बातें - 'तुम जो कुछ भी कर सकने लायक हो उसे स्वीकार करो, अपने आपको व दूसरों को माफ़ करना सीखो, ऐसा मत सोचो कि संलग्न होने में बहुत देर हो गयी' आदि मूल्यवान कथन पढ़कर, उनका साहस देखकर बहुत कुछ सीखने को मिला। प्रो मॉरी की मौत सबको मानवता का पाठ पढ़ा गयी।

काश! दुनिया में सभी इसी दार्शनिकता को जीवन के हर मोड़ में अपनाये तो भेदभाव, घृणा व अपराधों की दुनिया में अपना जीवन, अपने देश का मान एवं मानवता का बेड़ा गर्क करने वाले, दिशाहीन न होकर एक जुट हों और नए संसार की रचना का अथक प्रयास आरम्भ करें। ईश्वरीय वरदान स्वरूप अपने अन्दर छिपे सहज सरल शिशु को पहचानें व घृणा रूपी विष से स्वयं को मुक्त रखें।

मेरा मन कहता है हम अनमोल नयी दुनिया का निर्माण स्वयं कर सकते हैं सिर्फ दिल दिमाग की पिटारी को खोलने की जरूरत है जिसकी चाबी हम स्वयं ही हैं सिर्फ सभी को एकजुट होकर उस खजाने को खोलने की जरूरत है। और उम्मीद की जा सकती है कि आने वाला युग, नयी पीढ़ी, हमारे सुविचारों, कल्पनाओं का युग व पीढ़ी होगी।

कहानी 'प्यार की सजा' के लिए पुष्पाजी भी लाखों बधाईयों की हकदार हैं। अमेरिका में अकेले रहने वाले बच्चों के भाव, रितु व रोजी के रूप में अमेरिका के मैत्री भरे हाथों को अति सुंदर तरीके से व्यक्त किया है। कहानी पढ़ते हुए मन खोकर पहले की दुनिया में विचरण करने लगा। गर्भनाल पत्रिका ज्ञानवर्द्धन में अत्यंत सहायक है। इसकी उज्ज्वलता की दिल से कामना करते हैं।

शोभा पाठक , अमेरिका

गर्भनाल के मार्च अंक में 'अपनी बात' के अंतर्गत गंगानंद झा ने बहुत ही मार्मिक पहलू पर स्पर्श किया है। जाने अनजाने 'मृत्यु' हम सबके भय का कारण होता है। इसी सन्दर्भ में अपने जीवन का एक वाक्या याद आता है। कभी नहीं सोचा था कि मुझे मृत्यु का भय होगा। वह भी तब जब रोज के जीवन में बीमारी और मृत्यु से अक्सर सरोकार होता हो।

अस्पताल में काम करते समय हमारा अक्सर सामना होता है ऐसे वयोवृद्ध मरीजों से जिनका स्वास्थ्य बहुत जीर्ण होता है। ऐसे में जीवित रहने का एकमात्र कारण आधुनिक चिकित्सा होती है। यह जीवित अवस्था बहुत ही दयनीय होती है। चूंकि उनको हर प्रकार से दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है अतः ऐसी अवस्था में भी देखने में आता है कि व्यक्ति मृत्यु को स्वीकार करने में बहुत कठिनाई महसूस करता है।

बड़े असमंजस में पड़कर विचार आया की आखिर क्यों हम मृत्यु से इतना भयभीत होते हैं। और हर बार निर्णय प्रगाढ़ होता जाता है कि समय आने पर हम मृत्यु से भयभीत न होंगे।

इसी बीच डॉ. प्रणव पंड्या, देव संस्कृति विश्विद्यालय कुलपति के 'ध्यान' की कक्षा में 'मिटने का ध्यान' विषय पर 'व्याख्या' एवं 'ध्यान' करने का मौका मिला। चूँकि व्याख्या के दौरान मन बहुत शांत हो चुका था अतः ध्यान तक पहुँचने पर बहुत आसानी से एकाग्रता हुई और निर्देशों का पालन होने लगा। इस ध्यान में 'अंत्येष्ठी' की अनुभूति कराई जा रही थी।

अपनी ही देह को विसर्जित होते हुए देख अपने अस्तित्व को समाप्त होने का अनुभव कराया जा रहा था। समाप्ति तक पहुँचते-पहुँचते एक गहरा सन्नाटा और सूनापन जैसे तूफ़ान की भांति अन्दर तक झकझोर गया हो। अनुभूति हुई उस क्षण की कि जब अति-निकट सम्बंधिजनों के बिछोह का कष्ट सर्प की तरह डस गया हो। आंसुओं की धार बहने लगी और बिलख पड़े जैसे कि कोई भयानक स्वप्न देखा हो।

यह अनुभूति थी एक अटल सत्य की। सत्य – मृत्यु का, अंत का -- जिसे समय रहते स्वीकार करना एक धार्मिक या आध्यात्मिक कृत्य नहीं बल्कि प्रगतिशील वैज्ञानिक सोच है।

इसका जीवंत उदाहरण हम देख पाते हैं उन लोगों में जिनने अपने जीवन में 'मृत्यु निकट अनुभव' (ग़्ड्डठ्ढ क़्ड्डठ्ठ्यण कन्द्रड्ढद्धत्ड्डदड़्ड) होने के बाद अपने जीवन में आमूलचूल परिवर्तन कर हर एक पल को ऊँचे उद्देश्य के लिए पूर्ण उत्साह के साथ जिया है।

अंक में इसी विषय को आगे और विस्तार से ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव ने चिन्तन में 'भय' के जरिये बखूबी समझाया है।

'शब्दों की चाभी' आज के समय के बहुत जरूरी विषय को छूता है। शारीरिक स्वास्थ्य को सब कुछ मान लेने वाली वर्त्तमान चिकित्सा पद्धति की कमी को समझना हम सबके लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। सभी कविताओं ने मन मोह लिया। डॉ. इवा अरादी का उत्तर 'क्या विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी की गुणवत्ता को बढ़ाते हैं?' विषय पर बहुत सटीक लगा।

माधवी सिंह, अमेरिका

"Cogito ergo sum' लैटिन में कही गयी रेने डेसक्रेट्स की यह उक्ति इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि मानव का अस्तित्व उसकी सोच से ही प्रमाणित होता है। गर्भनाल के मार्च-२०१३ अंक की 'अपनी बात' में सम्पादक महोदय ने मौरिस के उसके आखिरी दिनों में होने वाले मानसिक अंतर्द्वन्द्व और उस पर सकारात्मक विचारों की विजय का सटीक चित्रण किया है। मानव सभ्यता के विकास के इतिहास में इस बात पर सदैव अंतर्द्वन्द्व रहा है कि क्या अपनाया जाय और क्या छोड़ा जाए। विभिन्न कालखंड में अनेक मानव मूल्यों की स्थापना उसके अस्तित्व के साथ गुँथी रही है। पर प्रत्येक काल में एक बात सदैव स्थापित हुई है कि मानव प्रत्येक परिस्थिति में अपने आंतरिक अनुकूलन की प्रक्रिया के द्वारा बाह्य प्रतिकूलताओं पर विजय पाता रहा है। यही उसकी सोच के शुभ की ओर अग्रसर होने व अशुभ के अंत का द्योतक है। इसे राम की रावण पर विजय, दुर्गा के महिषासुर मर्दन, कंस का कृष्ण के हाथों अंत किसी भी रूप में समझा जा सकता है क्योंकि अंत हमेशा अशुभ का होगा व शुभ सदैव प्रतिष्ठित होगा। इसकी प्रतिष्ठा में ही हमारा अस्तित्व निर्भर है। हमारे अंदर भी और बाहर समाज में भी। क्योंकि बाह्य जगत हमारे मन का ही प्रतिरूपण है। यही वरणीय है और अनुकरणीय भी। गंगानन्द झा जी इस प्रकार के शुभ विचारों की प्रतिष्ठा में सन्नद्ध हैं और पाठकों को उनसे शुभ की प्रेरणा मिलती रहती है। साधुवाद।

प्रो. वी.के. सिंह, चंडीगढ़

इंटरनेट पर विचरण करते हुए 'गर्भनाल' पत्रिका से साक्षात्कार हुआ। सुखद आश्चर्य की बात है कि व्यावसायिकता के इस दौर में भी आप अर्थलाभ की कामना से दूर, भाषा और संस्कृति के संरक्षण के लिए श्रम कर रहे हैं। आपको और सभी साथियों को हार्दिक धन्यवाद। न सिर्फ पत्रिका की विषय सामग्री सर्वोत्तम है, बल्कि इसका आकल्पन भी बहुत सुंदर है। मार्च २०१३ के अंक में कई रचनाएं बहुत पसंद आईं। सीएस प्रवीण कुमार जैन का लेख 'भाषा के साथ ज्यादती कब तक' पढ़कर यह संतोष हुआ कि तकनीकि और व्यावसायिक विषयों से जुड़े लोग भी अपनी भाषा से प्रेम करते हैं और उसे लेकर चिंतित हैं। रमेश जोशी का व्यंग्य 'बिरयानी में चूहा' भारतीय नेताओं और दलों की छद्म धर्मनिरपेक्षता पर अच्छा कटाक्ष था। मनोज कुमार श्रीवास्तव का लेख 'विभुम्' पढ़कर लगा कि वे सही मायनों में पंडित हैं। उत्कृष्ट संपादन के लिए हार्दिक बधाई।

बालकृष्ण गुप्ता 'गुरु', खैरागढ़

गर्भनाल पत्रिका का ताजा मार्च-२०१३ अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री उच्च स्तरीय है। सभी लेख एवं कविता-कहानी भी रोचक हैं। हिन्दी के इस नेक कार्य के लिये आपको साधुवाद एवं शुभकामनाएँ।

जगदीश चन्द्र, चैन्नई

गर्भनाल का ताजा अंक प्राप्त हुआ। इसमें रोचक सामग्री के साथ प्रत्येक माह कुछ नया पढ़ने को मिलता है।

हरमिन्दर सिंह

गर्भनाल का ताज़ा अंक मेरे सामने है और बिना किसी रुकावट उसे पूरा आखों से निकल चुकी हूँ, हर बार की तरह संतुष्ट हूँ एक पाठिका के तौर पर की कुछ नया पा सकी। किसी लेख ने नव विचार दिए, तो कुछ ने नए तथ्य, वहीं कुछ ने विचारों को उद्वेलित भी किया। पत्रिका की शुरुआत डॉ. मारी के सन्दर्भ से बेहतर हो ही नहीं सकती थी, यहाँ कवि नीरज की दो पंक्तियाँ चरितार्थ प्रतीत होती है : *जियो हर पल जियो अंतिम पल ही मान, अंतिम पल है कौन-सा, कौन सका है जान।*

डॉ. मॉरी निःसंदेह एक गूढ़ सन्देश दे जाते हैं, इस सन्देश को पाठक जन तक पहुँचाने का आपको शुक्रिया। इसके बाद जिक्र करना चाहूँगी सी.एस. प्रवीन कुमार जैन के लेख के सन्दर्भ में, हिंदी को लेकर उनकी चिंता ये अनुमान देती है कि वे इसे लेकर न केवल गंभीर हैं वरन वे हिंदी से हम सबकी तरह ही प्यार भी करते हैं। मैं उनकी भावनाओं का आदर करती हूँ और उन्हें ये विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि भाषा का आरम्भ तो होता है, परन्तु उसका अंत संभव नहीं, जब तक कि एक भी हिंदी से प्रेम करने वाला जीवित है, उसका समापन नहीं हो सकता। यहाँ तो कई हिंदी प्रेमी हमारे साक्ष्य है अतः वे चिंता मुक्त रहें। हिंदी के लिए काम करते रहे। हम सब इस प्रयास हेतु साथ हैं। नीरज जी की 'शायरी की बात' हर बार की तरह पठनीय था। एक बार फिर इस उम्दा प्रयास हेतु गर्भनाल की पूरी टीम को हार्दिक धन्यवाद।

पूजा भाटिया 'प्रीत', इन्दौर

गर्भनाल का मार्च-२०१३ अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका के हर एक अंक में पढ़ने की बढ़िया सामग्री रहती है। इस बार का अंक भी प्रशंसा के योग्य है। पंचतंत्र में 'बेचारा नेवला' अच्छा लगा। विजय कुमार सिंह कि कविता अच्छी लगी पर उसमें कुछ ज्यादा ही कठिन शब्दों का उपयोग किया गया है। सुमन वर्मा की कविता जो दामिनी के ऊपर है बढ़िया है। किस-किस के बारे में कहूँ, पूरा अंक ही संग्रहणीय है।

कीर्ति श्रीवास्तव, भोपाल

गर्भनाल का मार्च अंक साज-सज्जा और सामग्री में उत्तम है, जितना अभी तक पढ़ा है उसमें कविता 'आइना' और 'दामिनी' अच्छी लगीं है। अमृता प्रीतम की यादों को विजय निकोर जी ने बहुत अच्छी तरह प्रस्तुत किया है।

बीनू भटनागर

आज गर्भनाल ई-पत्रिका को विधिवत देखा। बहुत अच्छी लगी, प्रयास और उत्साह को मेरा सलाम।

डॉ. जयप्रकाश तिवारी, लखनऊ

आपकी बात

गर्भनाल पत्रिका का नवीनतम अंक मिला। पत्रिका अपने आप में एक मिसाल है। कविता मेरी प्रिय विधा है, इसलिए कविताएं सब से पहले पढ़ता हूं । अन्य सभी सामग्री सदा की तरह हृदयग्राही हैं।

शेर सिंह, गाजियाबाद

गर्भनाल के मार्च अंक में सबसे पहली रचना 'अपनी बात' सबसे ज़्यादा पसंद आई। मार्मिक प्रसंग का बेहद सुंदर और प्रोत्साहक वर्णन। जीवन के प्रति सजगता का प्रतीक।

अरविंद कुमार

गर्भनाल पत्रिका आज़ देश-विदेश में अनेक पाठकों के बीच अपनी पैठ बना चुकी है। आप निरंतर अपने प्रयास को ज़ारी रखे हुये हैं, जिस के लिए अनेक साधुवाद। ऐसे ही आप उत्तरोत्तर प्रगति-पाठ पर निरंतर आगे बढ़ते रहें।

नवीन सी. चतुर्वेदी, मुंबई

Hello Garbhanal, From Long i waiting to write ..every month i am disparately waiting to read new " Patrika". I am now habitual of reading this.I like continuous series of "MANTHAN" too much. How easily writer "Mr. Dave" had explain the three stages of life. Thank You Mr. DAVE , Salute to writer's like you. This Magazine is absolutely perfect.Looking forward to see such lekh in many more months.

Stuti Dhagat

I thoroughly enjoyed the reading of your wonderful and informative Hindi magazine. Your contribution in promoting Hindi as well as highlighting the current issues of the society is invaluable. Country needs such person badly thesedays. I congratulate you and your entire team.

RDS Sroha

Thank you for sending this across as always, beautifully brought out this time as well. Read the editorial by Respected Ganganand Jha ji. Very thoughtful of him to have put this in the editorial and very inspiring too. Prof. Morrie indeed lived his death, most of us in the world do not want to have this privilege of living our own death.Warm regards,

Vinay Mehta

Who Are You Calling Old?

Proud2B60 :

is a special campaign by Help Age India.

Millions of people are living their later years with unprecedented good health, energy and expectations for longevity.

Suddenly, traditional phrases like "old" or "retired" seem outdated. Help Age's "Who Are You Calling Old?" campaign presents the many faces of this New Age.

New language, imagery, and stories are needed to help older people and the general public re-envision the role and value of elders and the meaning and purpose of one's later years. This campaign is about leading this change. It is about combating the negative image of the frail, dependent elder.

General Query

http://www.helpageindia.org

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी